* ओ३म् *

॥ नम्र-निवेदन ॥

मानतीय पाठकवृन्द !

हिन्दी साहित्य में भाषा कवि शिरोमणि तुलसी दासजी कृत रामचरितमानस जगत्प्रसिद्ध है। ऐसा कोई गांव नगर एवं शहर नहीं जहां इस अमूल्य पुस्तक का प्रचार न हो। भारतवर्ष ही नहीं किन्तु अन्य देशीय जन भी इसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से करते हैं। निस्सं-देह यह अमूल्य पुस्तक अनेक उपयोगी विषयों से सुभूषित है परन्तु पुस्तक के बड़े होने के कारण विचारणीय एवं प्रतिदिन स्वाध्याय करने योग्य तथा बालक और बालिकाओं को कण्ठाग्र कराने एवं उनको दृढ़ कर्मयोगी बनानेवाले विषयों पर पूर्ण दृष्टि नहीं रहती। अतएव श्री पिताजी का बहुत दिनों से यह विचार था कि उपरोक्त पुस्तक के उपदेशमय विषयों का संग्रह कर मुद्रित कर दिया जावे जिससे भारतीय जनता उसके अमूल्य लाभों से वञ्चित न रहे परन्तु कतिपय कारणों से यह कार्य अब तक पूर्ण न हो सका।

ईश्वर की असीम दया से आज मैं पूज्यवर पिताजी की आज्ञा-नुसार इस पुस्तक का संग्रह कर आपको भेंट करता हूं। आशा है कि आप सपरिवार इसका पाठ कर अपने जीवन को सुखमय बना मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

कवि श्रेष्ठ वाल्मीकिजी कृत रामायण से भी इसी प्रकार के उपयोगी विषयों का संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित किया जावेगा।

साहित्य प्रेमियोंका
अनुचर
भद्रदत्त
पुत्र
श्री मु० चिम्मनलाल जी वैद्य

प्र० महेशऔषधालय
तिलहर
जि० शाहजहांपुर

१-५-२०

* ओ३म् *

अर्थात्

ज्ञान रामायण

प्रभुमहिमा और उसकी आज्ञा-पालन का फल ।

******

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी ।
सत चेतन घन आनन्दराशी ॥
अगुण अदंभ गिरा गोतीता ।
समदरशी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निर्मोहा ।
नित्य निरन्जन सुखसन्दोहा ॥
प्रभु सर्वज्ञ ब्रह्म अविनाशी ।
सदा एक रस सहज उदासी ॥

वह ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरुप, आनन्द की राशि, सर्वत्र

व्यापक, अविनाशी, अकेला, समदर्शी, निर्गुण, दम्भरहित-वाणी और इन्द्रियों से परे, निर्दोषी, अजय ममता, आकार और मोह से रहित, निरंजन, सुखस्वरूप, सर्वज्ञ, स्वाभाविक उदासीन और सर्वदा एक रस रहने वाला है।

बिनुपद चलै सुनै बिनुकाना।
कर बिनु कर्म करै बिधिनाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी॥
तनु बिनु परश नयन बिनु देखा।
गहै घ्राण बिनु बास अशेषा॥

यह प्रभु बिना पैरों के चलने, बिना कानों के सुनने, बिना हाथों के नाना प्रकार के कर्म करने वाला, मुख के बिना सब रस का चखने, बिना वाणी के बहुत बोलने वाला, योगी, बिना शरीरके सबको छूने, नेत्रोंके बिना देखने और नासिका के बिना सम्पूर्ण गंधों को सूँघने वाला है।

देशकाल दिशि बिदिश हुमाहीं।
कहहुसो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥

देश, काल, दिशा, विदिशा आदि कोई ऐसा स्थान नहीं जहां ईश्वर विद्यमान न हो। उस प्रभु की गूढ़ गति को जानने के लिए उसका मनन करना चाहिए।

जिस प्रकार कार्य्य को देख कर कारण का (धुँवा को देख आग का) अनुमान होता है वैसे ही जगत को देखकर ईश्वर का अनुमान किया जाता है।

सब कर फल हरि भक्ति सुहाई।
सो बिनु सन्तन काहू पाई॥

मनुष्य जीवन का फल यही है कि ईश्वर की भक्ति करे, वह भक्ति श्रेष्ठों के सत्सग के विना नहीं मिलती अर्थात् सत्संग से ही मनुष्य ईश्वर भक्त बन सकता है।

अस बिचारि जो करु सत्संगा।
राम भक्ति तेहि सुलभ विहंगा॥

ऐसा विचार कर जो सत्सङ्ग करते हैं। उनको ईश्वर की भक्ति प्राप्त हो जाती है।

ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि
कथासुधामथिकाढ़हीं, भक्तिमधुरताजाहि
विरतिचर्मअसिज्ञानमद, लोभमोहरिपुमारि
जयपाईसोइहरिभगति, देखखगेशविचारि

वेद रूपी क्षीर समुद्र है। उसको सन्त रूपी देवताओं ने ज्ञान रूपी मदरा चल से मथकर कथारूपी अमृत को निकाला जिसमें भक्ति रूपी मिठाई भरी है सन्तरूपी देवताओं ने वैराग्य की ढाल और ज्ञान की तलवार से मद, लोभ और मोहरूपी शत्रुओं को नाश कर ईश्वर भक्तिरूपी जय को प्राप्त किया। हे गरुड़जी! तुम स्वयं भी विचार कर देखलो कि ईश्वर भक्ति से ही सब साधन सिद्ध हो जाते हैं।

जाते वेगि द्रवौं मैं भाई।
सोमम भक्ति भक्त सुखदाई॥

हे लक्ष्मण ! ईश्वर से अत्यन्त प्रेम करना, अर्थात् ईश्वर की आज्ञानुसार (वेदानुकूल) चलना ही भक्ति कहाती है और इसी भक्ति से परमात्मा प्रसन्न रहते हैं।

जिमिथलविनुजलरहिन सकाई।
कोटि भांति कोउ करै उपाई॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहिन सकै हरि भक्ति विहाई॥

जिस प्रकार करोड़ों यत्न करने पर भी विना पृथ्वी के आधार के जल नहीं रह सकता। उसी भांति ईश्वर की भक्ति के विना मुक्ति सुख की प्राप्ति नहीं होती।

गरल सुधा सम अरिहित होई।
तेहि मणि विनु सुख पावन कोई॥
व्यापहि मान सरोगन भारी।
जेहि के वश सब जीव दुखारी॥

उस भक्ति रूपी मणि के प्रभाव से विष अमृत हो जाता और शत्रु मित्र वन जाते है एवं जिन के वशीभूत होकर सम्पूर्ण जगत् के जीव दुःखी हैं वह मानसिक रोग भी भक्तिमान पुरुषों को नहीं सताते–अर्थात् सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति हो जाती है।

राम भक्ति मणि उर वस जाके।
दुख लव लेश नस्वप्नेहु ताके॥

चतुर शिरोमणि ते जगमाहीं।
जे मणि लागि सुयत्न कराहीं ॥

भक्तिरूपी मणि के धारण करने वाले को स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नहीं मिलता। इस संसार में वही मनुष्य चतुरों में शिरोमणि हैं, जो इस भक्तिरूपी मणि के प्राप्त करने का यत्न करते हैं।

परम प्रकाश रूप दिन राती।
नहिं कछु चाहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दारिद्र निकट नहिं आवा।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥

भक्तिरूपी मणि दिन रात प्रकाशित रहती है उसके लिए दिया बत्ती की कुछ आवश्यकता नहीं। भक्ति द्वारा मोहरूपी दरिद्र पास नहीं आता और लोभ रूपी वायु उस दीपक को बुझा नहीं सकती।

फूलहि नभ बरु बहु विधि फूला।
जीवन लह सुख हरि प्रतिकूला॥
तृषा जाइ बरु मृग जल पाना।
बरु जामहि शश शीश विषाना॥
अंधकार बरु रविहिं नशावै।
राम विमुख सुख जीवन पावै॥
हिमते अनल प्रगट बरु होई।

नाम जीह जपि जागहिं योगी ।
विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा ।
अकथ अनामय नाम नरूपा ॥

नाम और रूप रहित अकथनीय जिस जगदीश्वर को योगीजनों ने मौनरूप से नाम जप कर प्राप्त किया । उसी को सांसारिक प्रपञ्चों को छोड़ने वाले जन वैराग्य से अनुभव कर सकते हैं ।

साधक नाम जपहिं लय लाये ।
होहिं सिद्धि अणिमादिक पाये ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी ।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥

जो पुरुष मन लगा कर उस प्रभु का ध्यान करते हैं, वह अणिमादिक सिद्धि को प्राप्त हो सिद्ध बन जाते हैं तथा जिसको दुःख में स्मरण करने से सुख की प्राप्ति होती है ।

राम भक्त जग चारि प्रकारा ।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
आदि अन्त को उजासुनपावा ।
मतिअनुमान निगम असगावा ॥

पुण्यात्मा, पापरहित और उदार जिज्ञासु, साधक, आर्त और ज्ञानी पुरुष परमात्मा के भक्त बन सकते हैं । किसी ने भी उसका आदि अन्त नहीं पाया । वेदों में कहा गया है कि

विमुख राम सुख पाव न कोई ॥
वारिमथे वरु होइ घृत, सिकताते वरुतेल।
विनुहरिभजनभवतारिय, यहसिद्धांतअपेल ॥

चाहे आकाश में विना आधार के फूल खिल जावे, चाहे मृग जल के पीने से किसी की प्यास बुझ जावे, चाहे खरगोश के सिर पर सींग निकल आवे, चाहे अंधकार सूर्य का नाश करदे, चाहे महाशीतल पाले में अग्नि निकल आवे, चाहे जल को विलोने से घी, और रेते में से तेल निकल आवे, परन्तु परमेश्वर की भक्ति के विना कोई संसार सागर को नहीं तर सकता यह सिद्धान्त निश्चय किया हुआ सब शास्त्रों का सारभूत है।

सोइ सर्वज्ञ गुणी सोई ज्ञाता।
सोई महि मंडन पंडित दाता॥
धर्म परायण सोइ कुलत्राता।
राम चरन जाकर मन राता॥

इस लिए वही सर्वज्ञगुणी, ज्ञानी, पृथ्वी का भूषण, पंडित दाता, धर्मात्मा, और कुल की रक्षा करने वाला है। जिसका मन ईश्वर की भक्ति में लगा हुआ है।

शिक्षा—परमात्मा को सर्वत्रव्यापक समझ उसकी आज्ञानुसार कार्य कर जीवन को आदर्श बनाना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है।

अयोध्या का दृश्य

सब उदार सब परउपकारी। द्विज सेवक सब नर अरुनारी।
सब निर्दम्भ धर्म रतधूणी। नरअरु नारि चतुर शुभगुणी॥
सब गुणज्ञ सब पंडितज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।
एक नारि व्रत रतनरझारी। ते मनव चक्रम पति हितकारी॥

अयोध्या के नर और नारी उदार, परोपकारी, ब्राह्मणों की सेवा करने वाले, पाखण्ड रहित धर्म में तत्पर, दयावान, चतुर, गुणी, छल और कपट से रहित अपने २ कार्य्यों में निपुण और ज्ञानी थे। पुरुष एक स्त्री व्रत वाले तथा स्त्रियाँ भी मन वचन और कर्म से पति की सेवा करने वाली थी।

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। चरहिं एक संगगज पंचानन।
खगमृग सहज बैर बिसराई। सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

वनों में वृक्ष खूब फूलते और फलते तथा हाथी और सिंह आदि सभी पशु और पक्षी वैर भावको त्याग प्रेम पूर्वक निवास करते थे।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य नहिं काहुहि व्यापा।
सबनर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं सुधर्म निरत श्रुति रीती॥

दैहिक (शरीर सम्बन्धी) दैविक (बिजली आदि) भौतिक (सांसारिक जीवों के दिये कष्ट) दुःख किसी को नहीं थे। सब मनुष्य परस्पर प्रीति से व्यवहार तथा वेदानुकूल धर्म पथ पर चलने वाले थे।

अल्पमृत्यु नहिं कावनिउपीरा। सब सुन्दर सब निरुजशरीरा।
सरिता सकल बहैं बरबारी। शीतल अमल स्वादु सुखकारी॥

सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अतिप्रसन्न दशदिशा विभागा।

सब के शरीर निरोग्य थे तथा अल्पायु में किसी की मृत्यु नहीं होती थी। नदियाँ शीतल, निर्मल तथा स्वादिष्ट जल से भरी हुई, तालाब कमलों से युक्त और सम्पूर्ण दिशायें निर्मल और शोभनीय थी।

रत्न जटित मणि कनक अटारी। नाना रंग रुचिरंग चढ़ारी।
पुरचहुं पास कोट अति सुन्दर। रचे कंगूरा रंग रंग घर॥

रत्न और मणियों से जड़ित सोने की अटारी, अनेक रंग के सुन्दर कांचों से ढली हुई भित्तियाँ और पुर के चारों ओर रंग विरंगे कंगूरों से युक्त सुन्दर कोट था।

धवल धाम ऊपर नभ चुंवत। कलशमनहुं शशिरविद्युतिनिंदत।
बहुमणि रचितझरोखा भ्राजैं। गृहगृह प्रतिमणि दीप विराजैं॥

महल इतने ऊंचे थे मानों आकाश से बातें कर रहे हैं। उनके ऊपर रखे हुए कलश सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशित थे। झरोखे मणियों से जड़े हुए और घरों में प्रायः मणि समान प्रकाश करने वाले दीपक जलाये जाते थे।

सुमन वाटिका सबहिं लगाई। विविध भांति कर यतन बनाई।
लता ललित बहुभांति सुहाई। फूलहिं सदा बसन्त की नाई॥
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिविध सदा बहु सुन्दर।
नाना खग बालकन्ह जिआये। बोलत मधुर उडात सुहाये॥

गृहस्थी जनों ने अपने अपने घरों में नाना प्रकार की फुलवाडियां लगाई हुई थी जिनमें रंग विरंगी मनोहर लतायें बसन्त ऋतु के समान सदा फूलती रहती। भौंरे जिनपर मधुर शब्द करते तथा वायु शीतल मंद सुगन्धित चलती थी। अयोध्या के बालकों ने अनेक पक्षी पाले जो मधुर वाणी बोलते और स्वतन्त्रता से उड़ते थे।

उत्तर दिशि सरयू बहै, निर्मल जल गंभीर।
बांधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर॥

कहुं कहुं सरिता तीर उदासी। बसहिं ज्ञानरत मुनि सन्यासी।
पुरशोभा कछु बरणि न जाई। बाहर नगर परमरुचि राई॥

अयोध्या के उत्तर दिशा में गहरे निर्मल जलसे परिपूर्ण सरयू बहतीथी जिसके घाट ऐसे सुन्दर बनाये गयेथे कि कीचड़ का नाम भी न रहता था तथा उसके किनारे २ ज्ञानी, मुनि, संन्यासी और उदासी रहते थे। बाहर और भीतर से अयोध्यापुरी जिस प्रकार सुसज्जित रमणीय और सुशोभित थी उसका वर्णन नहीं होसक्ता।

शिक्षा—घरोंकी बनावट ऐसी हो जिसमें आंगन चौड़ा, पटाव ऊंचा, दरवाजे हवादार रहें तथा एक ओर को छोटीसी फुलवाड़ी भी अवश्य लगाना उचित है। विशेष के लिये मेरे पिता जी की बनाई नारायणी शिक्षा दोनों भागों को देखिये मूल्य १॥) मात्र।

यज्ञ से पुत्रोत्पत्ति।

शृंगी ऋषिहि वसिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा।

राजा दशरथ जी ने पुत्रों की प्राप्ति के लिये ऋषि शृंगको बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। जिससे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न यह चार पुत्र हुए।

नाम करण।

नाम करण कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी।

राजा दशरथ ने नामकरण का समय जान गुरुजी को बुलवा कुमारों के शुभनाम रखवाये।

चूड़ा करण।

चूड़ा करण कीन्ह रघुराई। विप्रन बहुत दक्षिणा पाई।

गुरु ने चूड़ा करण संस्कार किया और द्विजों ने दक्षिणा में धन धान्य आदि पाया।

यज्ञोपवीत।

भये कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।

गुरु गृह गये पठन रघुराई। अल्पकाल विद्या सब पाई॥

जब सब भाई कुमार अवस्था को प्राप्त हुए तो माता पिता और गुरु वसिष्ठजी ने यज्ञोपवीत किया तथा श्रीराम भाइयों सहित गुरु के घर अर्थात् गुरुकुल में पढ़नेके लिये गये जहां थोड़े ही समय में सारी विद्याओं को सीख, समावर्तन संस्कार करा घर लौट आये

महादेवजी का विवाह ।

वेदी वेद विधान संवारी । सुभग सुमङ्गल गावहिं नारी ॥

महादेव जी की विवाह वेदी वेद विधिसे बनाई गई और स्त्रियों ने मङ्गलकारी गाने गाये ।

जस विवाहकी विधि श्रुति गाई । महा मुनिन सो सब करवाई ॥

वेदों में जैसी विवाह की विधि बतलाई गई है । उसी रीति से महामुनियों ने महादेव जी की विवाह कराया ।

वेद मन्त्र मुनिवर उच्चारहीं । जय जयजय शङ्कर सुरकरहीं ॥

मुनियों ने वेद मन्त्रों को पढ़ा और देवताओं (विद्वानों) ने जय ध्वनि की ।

सीता जी का विवाह ।

इहि विधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई ॥
पढ़हिं वेद मुनि मंगल बानी । गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥

इस प्रकार जानकी जी जब मंडप में आईं तौ मुनियों ने आनन्द पूर्वक मंगलवाणीसे शान्ति पाठ तथा वेदपाठ किया देवताओं अर्थात् विद्वानों ने आकाश से फूलों की वर्षा की ।

राजा दशरथ की अन्त्येष्टि ।

नृप तनु वेद विहित अन्हवावा । परम विचित्र विमान बनावा ॥
चन्दन अगर भारबहु आये । अमित अनेक सुगंध सुहाये ॥

राजा दशरथ के मृतक शरीरको वेदानुसार स्नान कराया और बहुत सुन्दर विमान बना अगर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से राजा की अन्त्येष्टि की ।

शिक्षा—गर्भाधान से लेकर सब संस्कार वेदोक्त रीति से करने चाहिए ।

मनुष्य शरीर का महत्व और उसका कर्त्तव्य।

बड़े भाग्य मानुष तनुपावा। सुर दुर्लभ सद् ग्रंथन गावा॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा पाइन जे परलोक संवारा॥
सोपरत्र दुःख पावहीं सिर धुनि २ पछिताय।
कालहिं कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय॥

यह मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से मिलता है श्रेष्ठ ग्रन्थ ऐसा कहते हैं। कि यह देवताओं को भी दुर्लभ है। क्यों कि यही देह मोक्ष का द्वार तथा यज्ञादि श्रेष्ठ साधनों का धाम है। इस शरीर को पाकर जिसने परलोक नहीं सुधारा वे पीछे दुःखी होते तथा सिर धुनि २ पछिताते एवं काल कर्म और ईश्वर को मिथ्या दोष लगाते हैं।

नर तनुभव वारिधि कहँ बेरे। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरे॥
कर्ण धार सद्गुरु दृढनावा। दुर्लभ साज सुलभ कर पावा॥

यह मनुष्य शरीर संसारसागर का बेड़ा है और उस बेड़े के पार लगाने के लिये ईश्वर का अनुग्रहरूपी अनुकूल पवन है। सद्गुरु ही कर्णधार है जिनके उपदेशके द्वारा यह शरीररूपी दृढ़नाव दुःखरूपी भवसागर से सहल में पार हो जाती है।

जोन तरै भव सागरहि. नर समाज असपाइ।
सो कृत निन्द कमन्द मति, आतमहनि गतिजाइ॥

जो इस मनुष्य शरीर को पाकर भवसागर को नहीं तरते, वह ईश्वर के अनुग्रह के निन्दक, मन्द बुद्धि तथा आत्मघाती की गति को प्राप्त होते हैं।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
नर शरीर धरि जो पर पीरा। करहिं तेसहहिं महाभवभीरा ॥

दूसरों का हित करने के समान कोई धर्म और दुख देने के बराबर कोई पाप नहीं इस लिए जो मनुष्य शरीर को पाकर दूसरों को दुःख देते हैं वे बारम्बार नीच योनियों में जन्म लेते हैं।

करहिं मोहवश नर अघनाना। स्वारथ रत परलोक नशाना ॥
अस विचारि जो परम सयाने। भजहिं मोहिं संसृत दुःखजाने ॥

जो पुरुष अज्ञान वश अनेक पाप करते हैं वह स्वार्थ में फँस कर पारलौकिक सुखों को नहीं पाते। इस लिये चतुर महात्मा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सांसारिक प्रपञ्चों से पृथक् रह श्रेष्ठ कर्म योगी बनते हैं।

सरिता जल जलनिधि में जाई। होय अचल जिमिजियहरिपाई॥

जैसे नदियों का जल सागर में जाकर स्थिर हो जाता है वैसे ही ईश्वर को प्राप्त होकर मन अचल हो जाता है।

हानि कि जग इहि सम कछुभाई भजिय न रामहिं नरतनुपाई॥

हे भाई शरीर धारण कर जो ईश्वरका भजन नहीं करते उनका जन्म व्यर्थ ही है।

नर समान नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर याचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भक्ति सुखदेनी ॥

मनुष्य शरीर के समान और शरीर नहीं है क्योंकि चराचरके सम्पूर्ण जीव नर देह को ही चाहते हैं। यह मनुष्य शरीर ही नरक-स्वर्ग और मुक्ति की सीढ़ी तथा ज्ञान वैराग्य भक्ति एवं सुख के देने वाली है।

सोतनु धरि हरि भजहि नजेनर । होइँ विषय रतिमन्द मन्द तर ॥
कांच किराच बदलि शठलेही । करते डारि परस मणिदेही ॥
नरतनु पाइ विषय मन देहीं । पलटि सुधाते शठ विषलेहीं ॥

जो मनुष्य शरीर पाकर ईश्वर भजन न कर विषयोंमें मन लगाते हैं वह मन्द, बुद्धि पारस मणि के बदले कांच को खरीदते अथवा अमृत देकर विष गृहण करते हैं ।

शिक्षा—मनुष्य शरीर को पाकर श्रेष्ठ कर्म करना ही जीवन का साफल्य है ।

मनुष्य शरीर के भयंकर शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मोहन अन्ध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचा वन जेहि ।।
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा । केहि के हृदय क्रोध नहिं दाहा ।।

संसार में किस किसको मोहने अन्धा, कामन व्याकुल तृष्णा ने बावला तथा क्रोध ने हृदय को न जलाया हो।

ज्ञानी तापस शूरकवि, कोविद गुण आगार ।
केहि के लोभ विडंवना, कीन्ह न इहि संसार ।।

इस संसार में ऐसे ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि और पंडित कम हैं जिनको लोभ की विडम्बना नहीं हुई।

श्रीमदवक्रन कीन्ह केहि,प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगनयनी के नयन शर,को अस लागुन जाहि ।।

लक्ष्मी ने किसको कुटिल नहीं बनाया। प्रभुता ने किसे बहिरा नहीं किया। अर्थात् प्रभुता पाकर सब कोई किसी की नहीं सुनते और ऐसा कौन है जिसको मृगनयनी के नेत्रों का बाण न लगा हो

गुण कृत सन्निपात नहिं केही। कोन मान मद तजो निवेही ।
यौवनज्वर न काहि बलकावा । ममताकेहि करयशान नशावा ।।

भारी गुणों को पाकर सन्निपात किसे नहीं आता अर्थात् कौन सावधान रहता है। मान और मदसे रहित होकर संसार में कौन कार्य करता है। युवावस्था के ज्वर ने किसे बावला नहीं किया और ममता ने किसके यश का नाश नहीं किया।

मत्सर काहि कलंक न लावा । काहिन शोक समीर डुलावा ।
चिंता सांपिनि काहि न खाया ।को जग जाहि न व्यापी माया ॥

अभिमान ने किसे कलङ्कित नहीं किया । शोक रूपी पवन ने किसे दुखी नहीं किया । चिन्तारूपी सर्पिणी ने किसे नहीं डसा जगत् में ऐसा कौन है जिसको माया न व्यापी हो ।

कीट मनोरथ दारु शरीरा । जेहि न लाग घुन्को असधीरा ।
सुत वितलोक ईषणातीनी । केहिकी मतिइन्हकृतन मलीनी ॥

मनोरथ मनके कीड़े हैं । शरीर काठ के समान है ऐसा कौनधीर है जिसे मनोरथरूपी घुन न लगा हो । पुत्रैषणा (पुत्र की चाह) वित्तैषणा, लोकैषणा इन तीन इच्छाओं ने संसार में किसकी मति को मलीन नहीं किया ।

संसृति मूल शूल प्रदनाना । सकल शोक दायक अभिमाना ।

अभिमान जन्ममरण का मूल कारण है जिससे नाना प्रकार के दुःख और शोक उत्पन्न होते हैं ।

मोह सकल व्याधिन कर मूला । तेहिते पुनिउपजे बहु शूला ॥
काम वात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

सब रोगों का मूल कारण मोह है इसी से अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं । काम रूपी वात, लोभ रूपी कफ, क्रोध रूपी पित्त सदा मनुष्य की छाती को जलाता रहता है ।

प्रीति करहिं जोतीनों भाई । उपजे सन्निपात दुःखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्लभ नाना । ते सब शूल नाम को जाना ॥

जहां यह तीनों भाई इकट्ठे होकर बढ़ते हैं वहां महा दुःखस्वरूप सन्निपात रोग उत्पन्न हो जाता है जिससे प्राणी मर जाते हैं विषय का मनोरथ अत्यन्त दुर्गम है वे सब प्रकार के शूल हैं उनका नाम कौन वर्णन कर सके ।

ममता दद्रु कंड इरषाई । कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलाई ।
अहंकार अतिदुख दडमरुआ । दंभ कपट मदमान नहरुआ ॥

ममता दाद, ईर्षा खुजली, दुष्टता और मन की कुटिलता कुष्ठ, अत्यन्त दुख देने वाला अहंकार जलंधर, दम्भ कपट मद और मान नहरुआ के तुल्य रोग हैं।

तृष्णा उदर वृद्ध अति भारी। त्रिविध ईर्षणा तरुण तिजारी।
युगविधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥

तृष्णा बड़े भारी पेट बढ़ने का रोग, लोक, धन और पुत्रकी लालसा करना ही तीक्ष्ण तिजारी है। मत्सर (पराई भलाई का न देखना) और अज्ञान यह द्वन्द्वज दोष के ज्वर हैं।

इहि विधि सकल जीव जग रोगी। शोक हर्ष भय प्रीति वियोगी।
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय कानरवा पुरे॥

जगत के सारे जीवों को शोक हर्ष भय प्रीति और वियोग दुखी करता है। यह रोग विषयरूपी कुपथ्य से बढ़ते और मनुष्यों का तो कहना ही क्या सज्जनों के हृदयों को भी व्याकुल कर देते हैं परन्तु वे इन रोगों की औषधि करते रहते हैं।

सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा। संयम यह न विषय कर आसा।

जो सद्गुरु (श्रेष्ठ गुरु) रूपी वैद्य और वेद वाक्यों पर विश्वास कर विषय वासना को छोड़ देते हैं यही इन रोगों से बचने का उपाय है। (अर्थात् श्रेष्ठ गुरुजनोंका सत्संग और ईश्वरभक्ति से उपरोक्त सब रोग नष्ट होजाते हैं जैसा सत्संग और ईश्वर भक्ति विषय में वर्णन किया गया है।

शिक्षा—काम, क्रोध, मोह, मद, अहंकार आदि शत्रुओं को जीतने वाले ही जगत को वशकर परमानन्द को प्राप्त कर सक्ते हैं।

संत (श्रेष्ठ पुरुषों) के लक्षण

वंदौं संत समान चित हित अनहित नहिं कोय ।
अंजलि गत शुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोय ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कहते हैं । अंजुलि में फूल लेने से जिस प्रकार दोनों हाथ बराबर सुगन्धि वाले हो जाते हैं । वैसे ही हित और अनहित में जो समान चित वाले हैं ऐसे साधु महात्माओं को मैं प्रणाम करता हूं ।

संत असंतन की अस करनी । जिमि कुठार चंदन आचरणी ।
काटै परशु मलय सुन भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

संत और असन्तों के आचरण चन्दन और कुल्हाड़ी के समान है देखो ? काटने पर भी कुल्हाड़ी को चन्दन का वृक्ष सुगन्धित ही कर देता है ।

साधु चरितशुभ सरिस कपासू । निरस विशद गुणमय फलजासू ।
जो सहिदुःख परछिद्र दुरावा । वन्दनीय जेहि जग यश पावा ॥

सत्पुरुषों के चरित्र सुन्दर कपास की नाईं है । जैसे कपास में रस कुछ नहीं परन्तु उसका फल गुण अर्थात् डोरा है जो कपास गरमी-शीत-वर्षा-तथा चरखी में ओटने, धुनाके यहां धुनने, चरखे में कतने, धोबी के यहां कुटने, दर्जी के यहां सुइयों के छिदने आदि अनेकों कष्टों को सहन कर वस्त्र स्वरूप में मनुष्य शरीर की रक्षा करती है इस लिये वह नमस्कार करने योग्य है यही उपरोक्त गुण महात्माओं में होते हैं जो अपने आप नाना भांति कष्ट उठा कर दूसरों का भला करते हैं ।

मुद मंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथ राजू ।

सन्तों का समाज आनन्द मंगल रूप तथा संसार में चलने फिरने वाला तीर्थ (जिससे मनुष्य दुःखों को पार कर मुक्ति प्राप्त सकते हैं) है ।

विषय अलंपट शील-गुणाकर। पर दुःख दुख सुख सुख देखेपर॥
समय भूतिरिपुविमद विरागी। लोभा मर्ष हर्ष भय त्यागी॥

साधुजन विषयोंसे रहित शील आदि गुणोंके धारण करने वाले तथा दूसरों के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होते हैं। सज्जन पुरुष समदर्शी शत्रुओं से रहित, तन धनादि का अभिमान न करने वाले, विषयों से विरक्त तथा लोभ, क्रोध, हर्ष, भय के न करने वाले होते हैं।

कोमल चित्त दीनन परदाया। मन वच क्रम ममभक्त अमाया॥
सवहि मान प्रदआप अमानी। भरत प्राण सम ममते प्राणी॥

सज्जन पुरुष कोमल चित्त, दीनों पर दया करने वाले, मनवचन और कर्म से मायारहित ईश्वर भक्त, सबको मान देने वाले; तथा अपनें आप मान रहित होते हैं हे भरत! ऐसे प्राणी मुझे प्राणों से प्यारे हैं।

विगत कामना नाम परायण। शान्त विरक्त प्रेम मुदितायन॥
शीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रेम संत जनुजत्री॥

कामना रहित जो ईश्वर को भजते हैं। वह शान्ति, त्याग, प्रेम और हर्ष के घर हैं जो सबसे शीलता, सरलता, और मित्रता रखते तथा ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करने वाले हैं वही सन्त अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष कहलाते हैं।

यह सब लक्षण वसहिं जासुउर। जानहुं तात संत संतत फुर॥
शमदमनियमनीतिनहिं डोलहिं। वचन असत्य कवहुं नहिंबोलहिं

हे भाई! उपरोक्त सब लक्षण जिनमें विद्यमान हैं उन्हें ही पूरा पूरा श्रेष्ठ जानो। जो शम, दम, नियम, नीति से कार्य करने वाले तथा किसी से कठोर वचन नहीं कहते वही सन्त हैं।

सज्जन सुकृत सिंधु समकोई। देख पूर विधु वाढहिजोई॥

जिस प्रकार समुद्र पूर्ण चन्द्रमा को देख बढ़ता है वैसे ही दूसरों की वृद्धि देख सज्जन प्रसन्न होते हैं।

षट विकार तजि अनघ अकामा। अकल, अकिंचन शुचि सुखधामा॥
अमित बोध परमारथ भोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी॥

सज्जन ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर और अहंकार इन छः दोषों को छोड़ कर पाप, कामना, कला, धन के लोभ, चाहना से रहित पवित्र और सुखी, सत्यवादी परमार्थके ज्ञाता सत और असत के जानने वाले पंडित, योगी

सावधान ममता मदहीना। धीरभक्ति पथ परम प्रवीना॥
गुणागार संसार दुःख रहित विगत सन्देह।
तजिमम चरण सरोज प्रिय तिन कह देहनगेह॥
निज गुण श्रवण सुनत सकुचाही। परगुण सुनत अधिकहर्षांही॥

सर्वदा धर्म करने वाले ममता औरमद से रहित धर्मशील भक्ति मार्ग में प्रवीण गुणों के धाम सांसारिक दुःख और सन्देह से रहित घर और शरीर से ममता न करने एवं ईश्वर आज्ञा माननेवाले श्रेष्ठ-जन अपनी प्रशंसा सुनते हुए सकुचाते परन्तु दूसरों की प्रशंसासुन कर प्रसन्न होते हैं।

जपतप व्रत अरु संयमनेमा। गुरु गोविन्द विप्रपद प्रेमा॥
श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया। मुदितामम पद प्रीति अमाया॥
बिरति विवेक विनय विज्ञाना। बोध यथारथ वेद पुराना॥
दंभमान मद करहिंन काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहि सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रतशीला॥

सन्तपुरुष जप, तप, व्रत, संयम, और नियम करने वाले गुरु ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति करने वाले, श्रद्धा, क्षमा, मित्रता, दया प्रसन्नता, कपट रहित ईश्वर में प्रीति करने वाले त्यागी, विवेक सत और असत के ज्ञानी, विनय, नम्रता और विद्या से युक्त, वेदान्त और पुराणों के जानने वाले, पाखण्ड और अभिमान रहित भूल कभी भी कुमारग में न चलने वाले और अपने प्रयोजन के बिना दूसरों का हित करने वाले होते हैं।

बूंद अघात हैं गिरि कैसे। खलके वचन सन्त सह जैसे।

दुष्टों के वचनों को सन्त ऐसे सहन करते हैं जैसे मूँसलाधार मेघों की वर्षा को पर्वत।

कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मदमाना।

जिस तरह चतुर किसान खेतों को नराकर (घास आदि निकालकर) साफ कर देते हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष मोह, मद और मानको त्याग कर शुद्ध हो जाते हैं।

ऊपर बरसे तृण नहिं जामा । संत हृदय जस उपज न कामा ।

जिस प्रकार ऊपर में जल पड़ने से एक तिनका भी नहीं जमता वैसे ही श्रेष्ठ पुरुषों के हृदय में कामना उत्पन्न नहीं होती ।

सरिता सर जल निर्मल सोहा । सन्त हृदय जसगत मदमोहा ।

जैसे शरद ऋतु में सरोवर का जल निर्मल हो जाता है वैसेही सन्त सज्जनों का हृदय मद और मोहादि से रहित निर्मल होता है

रस रस शोष सरिस सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमिज्ञानी ।

जैसे शरद ऋतु में सरोवर का जल धीरे२घट जाता है वैसे ही श्रेष्ठ ज्ञानी धीरे २ ममता को छोड़ देते हैं ।

नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं । संत मिलन सम सुख कछुनाहीं ।
पर उपकार वचन मन काया संत सहज स्वभाव खगराया ॥

संसार में सन्तों के मिलने के समान कोई सुख और दरिद्र के बराबर कोई दुःख नहीं । सन्तों का सहज स्वभाव मन वचन और कर्म से परोपकार करना ही है ।

सन्त सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असन्त अभागी ।
भूरुज तरु सम सन्त कृपाला । परहित सहनित विपति विशाला ॥

सज्जन पुरुष दूसरों के कल्याण के लिये अपने आप दुःख सहते हैं और अभागे असन्त (खोटे मनुष्य) दूसरों को दुख ही देते है । जिस प्रकार दूसरों को सुख देने के लिये भोजपत्र का वृक्ष अपनी छाल उतरवाता है उसी तरह श्रेष्ठ लोग पराये हितके लिये अनेक प्रकार की विपत्ति सहते हैं ।

सन्त उदय सन्तत सुखकारी । विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ।

जैसे सूर्य और चन्द्रमा का उदय संसार के सुखके लिये होता है । वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष सब का कल्याण करने वाले होते हैं ।

शिक्षा—सज्जन पुरुषों की पहचान उपरोक्त लक्षणों द्वारा करनी चाहिये और ऐसे धर्मात्मा श्रेष्ठ पुरुषों के मिलने पर उनकी शिक्षा अनुसार चलकर अपने जीवन को आदर्श जीवन बना अपने जन्म को सफल करना योग्य है ।

दुर्जन (खोटे मनुष्यों के) लक्षण

बहुरि बंदिखलगण सति भाये। जे बिनु काज दाहिने बांये ॥
परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरें हर्ष विषाद बसेरें ॥

अब मैं दुष्टों को स्वभाव से वंदना करता हूं जो बिना प्रयोजन ही मित्र से शत्रु हो जाते हैं दुर्जन पराये हित की हानि में अपना लाभ उजड़ने से प्रसन्न और बसने से दुःखी होते हैं।

जेपर दोष लखहिं सहस आखी। परहित घृत जिनके मनमाखी ॥
तेज कृशानु रोष महिषेशा। अघ अवगुण धन धनी धनेशा ॥

दुष्ट पुरुष दूसरों के दोष को हज़ारों नेत्रों से देखते हैं और घृत के समान दूसरे के उज्वल हित को मक्खी के समान बिगाड़ देते हैं खलों का तेज अग्नि के समान क्रोध महिषासुर के बराबर तथा पाप और अवगुणःरूपी धन कुबेर के धन के तुल्य होता है।

वंदौं सन्त असज्जन चरणा। दुःखप्रद उभय बीच कुछ वरणा।
बिछुरत एक प्राण हर लेहीं। मिलत एक दारुण दुःख देहीं ॥

अब मैं सन्त और असन्त दोनों की वन्दना करता हूं क्योंकि दोनोंही दुःखके देनेवालेहैं केवल अन्तर इतनाहीहै कि सन्त बिछुड़ने पर प्राण लेते हैं अर्थात् महात्माओं का वियोग दुःख असह्य होता है परन्तु दुष्ट मिलते ही छापा मारते हैं।

भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच।

जैसे अमृतपान करने से अमरता और विषके खाने से मृत्यु हो जाती है वैसे ही सज्जन पुरुष परोपकार कर प्रतिष्ठा और नीच अपनी निचाई से निन्दा पाते हैं।

गगन चढै रज पवन प्रसंगा। कीचड़ मिलहिं नीच जलसंगा।
साधु असाधु सदन शुकसारी। सुमरहिं राम देहिं गणगारी ॥

पवन के संग से धूल आकाश में उड़ती और वही नीच गामी जल के संग से कीचड़ हो जाती है। वैसेही साधुओं के घरमें तोते राम २ कहते हैं और दुर्जनों के यहां गाली अर्थात् कुवचन बोलतेहैं

खलन हृदय अति ताप विशेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।
जहँ कहुं निन्दा सुनहिं पराई। हर्षहिं मनहुं परीनिधि पाई॥

दुष्टों के हृदय दूसरों की संपति देख कर जलते हैं और पराई निन्दा सुनकर तो ऐसे प्रसन्न होते मानो बड़ी संपत्ति (धन) पाली।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।

दुष्ट पुरुष, कामी, क्रोधी, अभिमानी, लोभी, हिंसक, कपटी, कुटिल और पापात्मा होते हैं।

झूंठै लेना झूंठै देना। झूंठै भोजन झूंठ चबैना।
बोलहिं वचनमधुर जिमिमोरा। खाहिं महाअहि हृदय कठोरा॥

दुजनों का झूंठा ही लेना झूंठा ही देना झूंठा ही भोजन और झूंठा ही चवेना है। बोली तो यह मोरों के समान मीठी बोलते हैं परन्तु हृदय ऐसा कठोर कि सर्पको भी खाजाय।

परद्रोही परदाररत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरें मनुजाद॥

खल परस्त्री गामी पराई निन्दा, पर धनकी इच्छा और दूसरों से द्रोह करने वाले तथा पामर पापमय अर्थात् पाप रूप देह धारण किये हुये राक्षस हैं।

लोभै ओढ़न लोभै डासन। शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन।
काहू की जो सुनहिं बड़ाई। श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥

जिनका लोभही ओढ़ना, लोभही व्यवहार और लोभही बिछौना है। दिन रात जो पेट पूजा में ही लगे रहते हैं। जब किसीकी भलाई सुनते है तो ऐसा ऊर्ध्वश्वास लेते हैं मानो जाड़ा बुखार आ गयाह

जब काहू की देखहिं बिपती। सुखी होइँ मानहुं जग नृपती।
स्वारथ रत परिवार विरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु विप्रन मानहिं। आपुगये अरुघालहिं आनहिं।
करहिं मोहवश द्रोह परावा। सत्सङ्गति हरि कथा न भावा॥

यह जब किसी की विपत्ति देखते हैं तो ऐसे प्रसन्न होते हैं।

मानो संसार के राजा होगये। ऐसे स्वार्थी ठग, कामी, मोही, क्रोधी तथा माता पिता, गुरु और ब्राह्मणोंके निन्दक आप डूबे तथा दूसरों को भी डुबाने वाले, अज्ञान के वशीभूत हो दूसरों से द्रोह करते हैं अच्छे पुरुषों की संगति और ईश्वर की कथा तो उन्हें अच्छी ही नहीं लगती।

दामिनि दमक रहत घनमाहीं। खलकी प्रीति यथा थिरनाहीं॥

जैसे बादलों में बिजली चमकती है और थोड़ी ही देरमें छिप जाती है वैसे ही खलों की प्रीति भी स्थिर नहीं रहती।

क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जिमि थोरे धन खल बौराई॥

थोड़े धनको पाकर ही खल बौरा जाते हैं जैसे छोटी नदी थोड़े जलसे उतरा चलती है।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ॥

वर्षा ऋतु में जवासा ऐसे सूख जाता है जैसे अच्छे राज्य में दुष्टों का कर्तव्य।

जेहिते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहि हठि ताहि नशावा॥
धूम अनल संभव सुनभाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥

नीच पुरुष जिससे बड़ाई पाते हैं निस्सन्देह पहिले उसका ही नाश करते हैं जैसे अग्नि से उत्पन्न हुआ धुआं बादल बनकर अग्नि को ही बुझा देता है।

रज मगपरी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाइ प्रथम सो भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्ह परई॥

धूल मार्ग में निरादर से पड़ी रहती और नित्य प्रति सबके पैरों की कुचल सहती है। फिर वायु के साथ ऊपर को उड़कर पहिले उसी को मलिन करती है, यहां तक कि राजा के मुकुट और नेत्रों तक में भर जाती है।

सुन खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुधनहिं करहिं अधमकर संगा॥
कवि कोविद गावहिं असनीती। खलसन कलह नहीं भलप्रीती॥

हे गरुड़ ! उपरोक्त सब बातों को समझ कर विद्वान नीचों का संग नहीं करते। कवि और पण्डितों का ऐसा कथन है कि दुष्टों से विरोध और प्रीति दोनों अच्छी नहीं।

उदासीन नित रहिय गुसाईं। खल परिहरिय श्वान की नाईं॥

हे गुसाईं ! दुष्टों से या तो उदासीन भाव रहे अर्थात् न प्रीति करे न वैर। या अशुद्ध कुत्ते के समान दुष्टों को समझ उनसे बात चीत ही न करे।

काहू सुमति कि खल संगजामी। शुभगति पावकिपरत्रियगामी॥

जिस प्रकार परस्त्री गामी की शुभगति नहीं होती। वैसे ही दुर्जनों की संगति से सुमति की प्राप्ति नहीं होती।

शिक्षा दुर्जनों का सङ्ग भूल कर भी न करना चाहिए।

अर्थात्

सत्सङ्गमहात्म्य

मज्जन फल देखिय तत्काला । काकहोहिं पिकबकहु मराला ॥

सन्त समाजरूपी तीर्थ में स्नान करने का फल शीघ्र ही मिल जाता है। काक सदृश कटु बोलने वाले मनुष्य भी पपीहा के समान समयानुकूल बोलने वाले तथा बगुला के तुल्य कपटाचारी मनुष्य हंस के समान सार को ग्रहण करने वाले बन जाते हैं।

सुनि आश्चर्य करै जनि कोई । सत्संगति महिमा नहिं गोई ॥

उपरोक्त बात पर कोई आश्चर्य न करे क्योंकि सत्सङ्ग की महिमा छिपी नहीं रहती है।

जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि यतन जहां जेहि पाई ॥
सो जानब सत्सङ्ग प्रभाऊ । लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥

इस जगत् में जलचर, थलचर, नभचर, एवं जड़ वा चैतन्य रूप संसार के जीवों ने बुद्धि कीर्ति, लक्ष्मी और भलाई तथा शुभगति सत्सङ्ग के द्वारा ही प्राप्त की। वेदनें भी प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति सत्सङ्ग के द्वारा बताई गई है अर्थात् सज्जनों का साथ सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि करने वाला है।

बिन सत्सङ्ग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सत्सङ्गति मुदमंगल मूला । सोई फलसिधि सब साधन फूला ॥

बिना सत्सङ्ग किये ज्ञान नहीं होता, और वह सत्सङ्गति ईश्वर की कृपा के बिना प्राप्त नहीं होती। साधु सङ्गति आनन्द रूपी वृक्ष की मूल है महात्माओं का सिद्धान्त इसका फल और शमदम आदि का साधन इसके फूल हैं।

शठ सुधरहिं सत्सङ्गति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

जिस प्रकार पारस पत्थर के लगाने से लोहा सोना हो जाता है उसी प्रकार मूर्ख पुरुष सत्संगति द्वारा श्रेष्ठ बन जाता है।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिये तुला इक अंग।
तुलैनताहि सकल मिलि, जो सुखलव सत्संग॥

जो सुख पिता स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति से होता है। उसकी तुलना सत्संग के सुख के बराबर नहीं हो सकती।

दीप शिखा सम युवति तनु, मनजनि होसि पतंग।
भजिय राघतज-काम मद, करिये सदा सत्संग॥

हे मन! दिये की बत्ती के समान स्त्री के शरीर में पतंग होकर मत जल किन्तु काम और मद को छोड़ कर सदा ईश्वर को भज, और सत्संग कर।

कबहुंदिवस महनिबिड़तम, कबहुँक प्रकट पतंग।
उपजै बिनशै ज्ञान जिमि, पाय सुसंग कुसङ्ग॥

जिस प्रकार वर्षा ऋतु के दिनों में कभी बड़ा अन्धकार होजाता है कभी सूर्य निकल आता है तो उजेला हो जाता है। उसी प्रकार कुसङ्गतिसे ज्ञान का नाश और सत्सङ्गतिसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

शिक्षा—सत्सङ्ग करना मनुष्यों का परमधर्म है। क्यों कि बिना श्रेष्ठ जनों के सङ्ग और सहवास तथा मैत्री के जीवन की सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

जेन मित्र दुख होहिं दुखारी । तिनहिं विलोकत पातक भारी।
निज दुखगिरिसमरजकेजाना । मित्र के दुखरज मेरु समाना ॥

जो अपने मित्रों को दुखी देख कर दुखी नहीं होते उन्हें देखने से पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुख को रज के तुल्य तथा मित्र के थोड़े दुख को पर्वत के समान जान कर उसके दूर करने का यत्न करना चाहिए।

जिनके असमति सहजन आई। ते शठ हठकत करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलःचा। गुण प्रगटै अवगुणहि दुरा ॥

उपरोक्त प्रकार की जिनकी स्वभाविक बुद्धि नहीं है वे मूर्ख हठ पूर्वक किसी से मित्रता नहीं करते। सच्चे मित्र तो बुरे मार्ग से हटाकर श्रेष्ठ पथ में चलाते और अवगुणों को छिपा कर गुणों को प्रकट करते हैं।

देत लेत मन शंकन धरहीं। बल अनुमान सदा हितकरहीं ॥
विपतकाल कर सतगुण नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुणएहा ॥

सच्चे मित्र बलके अनुसार देने लेनेमें कुछभी शंका नहीं करते। तथा सर्वदा हित चाहते और विपत्ति में सौ गुणा प्रेम करने वाले हैं वेद ऐसे गुण वालों को ही श्रेष्ठजन तथा मित्र बताता है।

आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरे भलाई ॥
जाके मन वच प्रेम नहिं, दुरे दुराये जान।

मुख पर मीठे वचन, पीछे अनहित तथा सर्प की गति समान कुटिलता करने वाले, हृदय में कपट और मन-वचन-से प्रेम नहीं करते वह कुमित्र कहाते हैं।

प्राचीन मित्रों का व्यवहार

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बन्धु बुलाई ॥
ले फल फूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हर्ष अपारा॥

राम के वन जाने के समाचार जब निषादों के राजा गुह ने पाये तब प्रसन्न हो अपने भाई बन्धुओं को बुला फल फूल आदि भेंट ले कर राम के मिलने को चले।

करि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं विलोकत आते अनुरागे॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुशल निकट बैठाई॥

दण्डवत करके भेंट आगे रख प्रसन्न हो श्रीराम का मुख देखने लगा तब स्वाभाविक प्रीति करने वाले राम ने पास बैठाल कर कुशल पूछी।

नाथ कुशल पद पंकज देखे। भयउँ भाग भाजन जन लेखे॥
देव धरणि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा॥

गुह ने कहा हे नाथ! आप के चरण कमल के दर्शन कर सब कुशल ही है मैं बड़ा भाग्यवान् हूं जो आज आपके भक्तजनों में मेरी गिनती हुई। हे देव! मेरी पृथिवी, धन, धाम, आप का ही है और मैं परिवार सहित आपका दासहूं। (कृपा कर नगर में पधारिये) प्रेम से भरे गुह के इन वचनों को सुन राम ने पिता की आज्ञा सुनाई कि मैं नगर में नहीं जा सकता तब राजा गुह ने रामके लिये कुश और कोमल पत्तों की शय्या बनाई और फल फूल आदि पदार्थ भोजनों के लिए मंगवाये। इस प्रकार जिस समय तक श्रीराम वहाँ रहे तब तक सब प्रकार सेवामें उपस्थित रहा। इसके अनन्तर जब निषादराज ने सुना; कि भरत आ रहे हैं। तो हृदय में दुःखी हो विचारने लगा।

कारण कवन भरत वन जाहीं । है कछु कपट भाव मनमाहीं ॥
जो पैजियन होति कुटिलाई । तौकत लीन्ह संग कटकाई ॥

किस कारण से भरत वन को जाते हैं मेरी समझ में इनके मनमें कुछ कपट है यदि हृदय में कुटिलता न होती तो साथ में सेना लेने की क्या आवश्यकता थी ।

जानहिं सानुज रामहिं मारी । करौं अकंटक राज्य सुखारी ॥
भरत न राजनीति उरआनी । तब कलंक अब जीवन हानी ॥

उन्होंने यह समझा है कि लक्ष्मणसहित राम को मार कर सुख पूर्वक राज्य करूँ । भरत ने राज नीति पर ध्यान नहीं दिया १४वर्ष राज्य करते तब तो कलंक लगता । और अब जीवन की हानि है ।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहिं समर न जीतन हारा ॥
का अचरज भरत अस करहीं । नहिं विप बेलिअमियफलफरहीं ॥

संपूर्ण सुर असुर वीर भी एकत्रित हो जावे तो भी युद्ध में राम को नहीं जीत सके । और भरत जी ऐसा करते हैं यह अचरज की बात नहीं क्योंकि विष की बेल पर अमृत फल नहीं लगते ।

अस विचारि गुहज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथ वासा बोरहु तरणि, कीजिए घाटा रोहु ॥

होइ सजाइल रोकहु घाटा । टाटहु सकल मरण के टाटा ॥
सन्मुख लोह भरत सन लेहू । जियत न सुरसरि उतरन देहू ॥

यह विचार कर गुह ने अपनी जाति वालों को यह आज्ञा दी । कि सावधान हो जाओ, पतवारों को बोर दो, नावडुबादो और घाट रोक, युद्ध की तैयारी कर भरत जी का सामना करो और उन्हें गंगा जी मत उतरने दो ।

समर मरण पुनि सुर सरितीरा । राम काज क्षण भंगुशरीरा ॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू । बड़े भाग्य अस पाइय मीचू ॥

रामचन्द्रजी के अर्थ युद्ध में मरना श्रेष्ठ है क्योंकि यह शरीर तो क्षण भंगुर है एक दिन नष्ट होगा ही इस लिए इससे अच्छा और

क्या होगा कि यह देह श्रीराम के काम में आवे। भरत जी राम के भाई और मैं तुच्छ। ऐसी मृत्यु बड़े भाग्य से मिलती है।

स्वामि काज करिहौं रणरारी। ध्रुव यशलेहुभुवन दश चारी॥
तजहुं प्राण रघुनाथ निहोरे। दुहुं हाथ मुद मोदक मोरे॥

श्रीराम के लिये घोर युद्ध कर १४ भुवनों में उज्वल यश प्राप्त करूँगा। रघुनाथ जी के निमित्त प्राण त्यागूँगा ऐसा करने से मेरे दोनों हाथों में आनन्द के लड्डू हैं। जीतनेसे राम की प्रसन्नता और मरने से परम पद की प्राप्ति होगी।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भक्ति महँजासुन रेखा॥
जायजियत जग सो महि भारू। जननी यौवन निपट कुठारू॥

साधु समाज में जिसका नाम नाम नहीं, रामभक्ति में जिसकी रेखा नहीं ऐसे मनुष्य का संसार में जीना व्यर्थ है, तथा वह पुरुष पृथिवी का भार और माता के यौवन रूपी वृक्ष के नाश करने को कुठार है। इस प्रकार निषादराज ने अपने मैत्रीधर्म का पालन करने के हेतु बड़ी शीघ्रता से युद्ध की तैयारी की।

(यह श्रीराम के मित्र थे)

गृध्रराजते भेट भई बहुविधि प्रीति बढ़ाय।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्णगृह छाय॥

श्रीराम की गोदावरी के किनारे गृध्रराज जटायु से भेंट हुई यह श्रीराम के पिता दशरथ के परममित्र थे इस लिये श्रीराम के साथ भी इनका स्नेह अकथनीय हुआ तथा इसी प्रेम के कारण जब रावण के वश पड़ी सीता जी का चिल्लाना सुना तो कहने लगे आह देखो।

अधम निशाचर लीन्हे जाई। जिमि म्लेच्छ वश कपिलागाई॥
अहह प्रथम तनु मम बलनाहीं। तदपि जाय देखो बलताई॥

दुष्ट राक्षस सीता जी को लिये जाता है जिस प्रकार म्लेच्छ के वश हो कपिला गाय दुःखी होती है वैसे ही जानकी जी बेवश हैं।

राजभक्ति
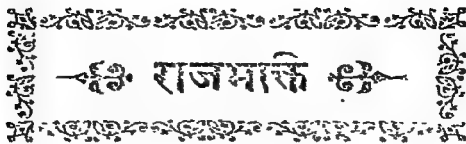
राम चलत अति भयउ विषादू। कहि न जाय पुर आरतनादू।

राम के चलने के समय पुरवासियों को इतना दुःख हुआ जिस का वर्णन नहीं हो सकता।

चलत रामलखि अवध अनाथा। विकल लोग सब लागे साथा।
कृपासिन्धु बहुविधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमवश पुनिफिरआवहिं॥

राम के वन चलने से अयोध्या अनाथ हुई सब लोग व्याकुल हो राम के साथ चल दिये यह देख कृपासागर राम ने बहुत प्रकार सबको समझाया परन्तु प्रेमवश कोई भी अयोध्या में रहने को राजी नहीं होता।

लागत अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अंधियारी।
घोर जन्तु सम पुर नरनारी। डरपहिं एकहिएक निहारी॥

काल रात्रि की अँधियारी के समान अयोध्या राम के वियोग में बड़ी भयावनी होगई पुरके नरनारी घोरजन्तु के समान एक को एक देखकर डरने लगे।

घर मशान परिजन जनुभूता। सुतहित मीतमनहु यमदूता।
बागन्ह विटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

घर मशान के समान, कुटुम्बी, तथा दुखी, हितू और मित्र यमराज के समान मालूम होने लगे। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हलाईसी तथा भयानकता के कारण नदी और तालाब देखे नहीं जाते।

हयगय कोटिन्ह केलिमृग पुर पशु चातक मोर।
पिकरथाङ्ग सुकसरिका सारस हंस चकोर॥

राम वियोग विकल सब ठाढे। जहंतहं मनहु चित्र लिखि काढे॥

करोड़ों घोड़े हाथी मृग नगर के गाय आदि पशु चातक मोर पपीहा चक्रवाक मैना सारस हंस और चकोर राम के वियोग में व्याकुल हो चित्र में अंकित चित्र की भांति जहां के तहां खड़े रह गये।

सवहिं विचार कीन्ह मनमाहीं। रामलषण सियबिन सुखनाहीं।
जहां राम तहं सबइ समाजू। बिन रघुबीर अवध केहिकाजू॥
चले साथ असमन्त्र दृढ़ाई। सुर दुलभ सुखसदन बिहाई॥
रामचरण पंकजप्रिय जिनहीं। विषयभोग वशकरहिंकितिनहीं॥

बालक वृद्ध विहाय गृह, लगे लोगसब साथ।

श्रीराम लक्ष्मण और सीता के बिना सुखनहीं, और जब वह अयोध्या से जा रहे हैं तो हमारा अयोध्या में क्या काम? श्रीराम के प्रेम के वशीभूत प्रजा ऐसा सोंच करके विषय भोगों को छोड़ रथ के पीछे २ चलदी।

ततसातीर निवासकीय, प्रथमदिवस रघुनाथ॥

रघुपति प्रजा प्रेमवश देखी। सदय हृदय दुख भयऊ विशेषी॥
करुणामय रघुनाथ गुसांई। वेगि पाय अहिं पीर पराई॥
कहि सप्रेम मृदु वचन सुनाये। बहुविधि राम लोग समुझाये॥
किये धर्म उपदेश घनेरे। लोग प्रेम वश फिरहि न फेरे॥
शील सनेह छांड़ि नहिं जाई। असमंजस वशभे रघुराई॥

प्रजा को प्रेमवश वन के अनेकों कष्ट भोगने के लिये तैयार देख करुणामय श्री रामचन्द्र जो बहुत दुःखी हुए, और वे सब को मृदु वचनों से अनेक प्रकार समझाने लगे परन्तु कोई भी प्रजाजन अयोध्या लौट जाने के लिए उद्यत न हुआ तब श्रीराम बड़ी द्विविधा में पड़ गये, अन्त को सब लोग जब सो गये, तो श्रीराम, लक्ष्मण, सीता सहित रथ पर चढ़ इस प्रकार आगे चले गये कि खोजने पर भी पुरवासी उनके जाने का कोई चिन्ह न पा सकें।

जागे सकल लोग भये भोरू। गये रघुनाथ भयो अति शोरू॥
रथकर खोज कतहुं नहिं पावहिं। रामराम कहि चहुं दिशिधावहिं॥
मनहुं वारि निधि बूड़ जहाजू। भयऊविकल बड़वनिकसमाजू॥

यद्यपि पहिले के भांति युद्ध में बल नहीं है तौभी शत्रु का बल देख-ता हूं यह कह चला और सीता से कहा—

सीता पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं यातु धान कर नासा।
धावा क्रोधवंत खग कैसे । छूटैपवि पर्वत कहं जैसे ॥

हे पुत्रि सीता! मन में मत डरो मैं इस राक्षस का अभी नाश करता हूं यह गृद्धराज पर्वत पर वज्र के समान रावण पर क्रोध कर दौड़ा। और बोला—

रे रे दुष्टठाढ़ किनहोही। निर्भयचलेसि नजानसि मोही।
आवतदेख कृतान्त समाना। फिर दशकन्ध करन अनुमाना॥

अरे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता मुझे न जान कर तू निर्भय कैसे चला जाता है काल के समान गृध्रराज को आते देख रावण लौटा और मनमें अनुमान करने लगा—

कीमैंनाक किखगपति होई। ममबल जान सहित पति सोई।
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छांड़िहि देहा॥

क्या यह मैनाक पर्वत है या गरुड़। जो मेरे बल को भली प्रकार जानता है जब निकट आया तो जाना कि अरे यह तो वृद्ध जटायु है और जैसे बूढ़े मनुष्य तीर्थ पर मर जाते हैं ऐसे ही यह गृध्रराज मेरे हाथों रूपी तीर्थ में अपने शरीर को छोड़ना चाहता है। ऐसा विचार रावण ने कहा—

मम भुजबल नहिं जानत, आवत तपिन्ह सहाय।
समर चढ़े तो यहि हतौं, जियत न निज थल जाय॥

अरे तू मेरी भुजाओं के पराक्रम को नहीं जानता तबही तपस्वियों की सहायता के लिये चला आता है। यदि लड़ाई लड़ेगा तो अवश्य मार डालूंगा।

सुनत गृध्र क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुशल गृहजाहू। नाहित असहोई बहु बाहू॥
रामरोषपावक अति घोरा। होइहि सकल शलभ कुलतोरा।
उतर नदेत दशानन योधा। तबहिंगृध्र धावा करिक्रोधा॥

धरिक चविरथ कीन्ह महिगिरा। सीतहिराख गृध्रपुनिफिरा।
दशमुख उठि कृत शर संधाना। गृध्र आय काटिसें धनुवाना ॥

यह सुनकर जटायू बड़ा क्रोध कर रावण की ओर दौड़ कर बोला हे रावण! मेरा कहना मानकर जानकी को यहां छोड़ कुशल पूर्वक घर को चले जाओ ,वरना रामकी क्रोधाग्नि में तेरा कुल पतंगे के समान भस्म हो जावेगा। रावण ने इसका कुछ भी उत्तर न दिया तब गृध्रराज जटायू ने मुकुट उतार रावण को ऐसा खींचा कि वह रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा, रावण के नीचे गिरते ही उन्होंने सीताको रथसे उतार वृक्षके नीचे बिठा दिया और आप युद्ध के लिये लौटे, इधर रावण ने भी उठकर धनुषवाण सम्हाला परन्तु रावण जैसे धनुष पर बाण चढ़ाता वैसे ही जटायू धनुष सहित बाण को काट स्वयं प्रहार करते। जिनसे कुछ ही देर में रावण की सारी देह घायल होगई और वह पीड़ा से व्याकुल हो मूर्छित होगया, जब मूर्च्छा जागी तब रावण क्रोध से दांत पीस मारने को दौड़ा गृध्रराज जटायू भी तैयार थे। बहुत काल तक रावण की चोटों का शक्तिभर जवाब देते रहे परन्तु कहां अतुल बलशाली राजा रावण और कहां बुड्ढा जटायू। अन्त को सच्चे मित्र धर्म का पालन करते हुए गृध्रराज ने रामचन्द्र के अर्थ अपने प्राणों को समर्पित कर दिया।

शिक्षा—संसार में मित्र वा सहेली बनाये बिना किसी का काम नहीं चल सका, शास्त्रकारों का तो यहां तक कथन है कि मित्र के बिना मनुष्य का सुख अधूरा रहता है। वास्तव में नर नारियों का यह आवश्यक कर्तव्य है परन्तु मित्र अथवा सहेली बनाने से पहले उसकी प्रत्येक भांति परीक्षा करलेना चाहिये, क्योंकि कुमित्र और बुरी सहेली से "मैत्री का यथार्थ सुख" कभी नहीं मिल सका—इसके अतिरिक्त जिनसे मैत्री करो उससे अपनी आयुपर्यंत निर्वाह करना ही श्रेष्ठों का कर्तव्य है।

राक्षसों के मारने से मैं सनाथ होऊं अर्थात् मेरा यज्ञ निर्वि-घ्न समाप्त हो।

अति आदर दोउ तनय बुलाये। हृदय लाय बहु भांति सिखाये॥
मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आननहिं कोऊ॥

राजा ने अति आदर से दोनों पुत्रों को बुला, हृदय से लगा अच्छे प्रकार समझा कर मुनि से कहा। भगवन्! प्राणों के तुल्य मेरे यह दोनों पुत्र हैं। अवश्य ही आप इनके रक्षक और पिता हैं।

सौंपे भूपति ऋषिहिं सुत, बहुविधि देइ अशीश।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद शीश।
पुरुषसिंह दोय वीर, हर्षि चले मनि भय हरण।

यह कह राजा ने दोनों पुत्र विश्वामित्र जी को सौंप अनेक प्रकार आशीर्वाद दी फिर पुरुषों में सिंह के समान दोनों वीर अपनी माता से विदा हो राक्षसोंका नाश करनेके लिये गुरु जीके साथ चलदिये।

चले जात मुनि दीन दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहि बाण प्राण हर लीन्हा दीन जान तेहि निजपद दीन्हा

मार्ग में जाते हुये मुनि ने ताड़का राक्षसी दिखाई जो दोनों राज कुमारों को देखते ही क्रोध कर दौड़ी परन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने एक ही बाण से उसको मार डाला।

आयुध सकल समर्पि के, प्रभु निज आश्रम आनि।
कन्द मूल फल भोजन दिये भक्ति हित जानि॥

प्रात कहा मुनिसन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मखकी रखवारी॥

माननीय गुरु विश्वामित्र जी आश्रम पर श्रीराम तथा लक्ष्मण जी को वनके कंद मूल फल खाने को देते हुये बड़े प्रेम से रखते थे, और कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण शस्त्र विद्या दोनों भाइयों को सिखा दी। शस्त्र विद्या में दक्ष हो जाने पर श्रीराम ने मुनि जी से निर्भ-यता पूर्वक यज्ञ करने को कहा तब विश्वामित्र जी ने अन्य मुनियों के साथ यज्ञ आरम्भ किया। श्रीराम भाई सहित यज्ञ की रक्षा करने लगे।

शिक्षा—धर्मात्मा गुरु की सेवा तन मन और धन से सदा करनी चाहिये।

मातृ भक्ति
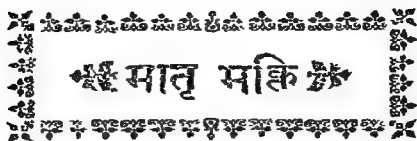
मोहिं कहु मातुतातदुखकारण । करियजतनजेहिहोयनिवारण ॥

हे माता ! पिता जी के दुःख का कारण कहिये । मैं वही उपाय करूँगा जिससे पिता जी का दुःख दूर हो ।

सुनहु राम सब कारण एहु । राजहि तुम पर बहुत सनेहु ॥
देन कहेउ मोहिं दो बरदाना । मांगेहु जो कछु मोहिं सुहाना ॥

कैकेई जी ने कहा हे राम ! राजाने मुझे दो वरदान देने कहे थे, अब मुझे जो कुछ अच्छा लगा वही मैंने मांगा अर्थात् तुम्हें १४ वर्ष का वनोवास और भरत को गद्दी, परन्तु राजा को तुम बहुत प्यारे हो इस लिए वे तुमसे कुछ कहनहीं सकते यह सुन श्रीरामने कहा—

सुन जननी सोइ सुत बड़भागी । जोपितु मातुबचनअनुरागी ॥
तनय मातु पितु पोषनिहारा । दुर्लभ जननी सकलसंसारा ॥

हे माता ! वही पुण्यवडभागी होता है जो माता पिता के वचनों में प्रेम करने हारा होता हैं ।

हे जननी ! संसार में माता पिता का पालन पोषण करने वाले आज्ञाकारी पुत्र विरले ही होते हैं ।

मुनिगण मिलन विशेष वन, सबहि भांति हित मोरि ।
तेहि महँपितु आयसु बहुरि सम्मत जननी तोर ॥

विशेष कर वनमें मुनियों के दर्शन आदि होनेसे सब प्रकार मेरा हित होगा तिसपर पिता की आज्ञा और आपकी सम्मति ।

भरतप्राणप्रियपावहिंराजू । विधि सबविधिमोहिंसन्मुखआजू ॥
जोन जाहूं बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहिं मूढ़ समाजा ॥

प्राणों के प्यारे भरत जी के राज्य पाने से मुझे परमसुख होगा इसी में मुझे सुख है आज ईश्वर सब प्रकार मेरे अनुकूल है ऐसा

एकहि एक देहिं उपदेशू। तजे राम हम जानि कलेशू॥
निंदहिं आपु सराहिं मीना। धिग जीवन रघुवीर विहीना॥
जोपै प्रिय वियोग विधि कीन्हा। तौ कस मरण न मांगेदीन्हा॥
यहिविधि करत विलाप कलापा। आये अवध भरे परितापा॥
विषम वियोग न जाय बखाना। अवधि आश सबराखहिंप्राना॥

प्रातःकाल प्रजाजन श्रीराम को चले गये जान, बहुत दुःखी हुये सब व्याकुलता से चारों ओर रथ के चिन्हों को ढूंढने लगे, लेकिन जब पता न पा सके तो ऐसे हताश हुए जैसे समुद्र में डूबने वाले जहाज के यात्री अपने जीवन से-श्रीराम के साथ छूटे हुए प्रजाजन परस्पर यह कहने लगे कि श्रीराम जी ने हमारे साथ में क्लेश जान कर ही हमको छोड़ दिया। परन्तु हमसे तो मछलियां कितनी अच्छी हैं कि यह जल से अलग होते ही प्राणों को छोड़ देती हैं। और हम श्रीराम के बिना अब तक जीवित हैं, धिक्कार है हमारे जीवन को- हाय विधाता ने यदि प्रिय पुरुषों का वियोग दुःख दिया। तो अब मांगने से मरण क्यों नहीं देते, इस भांति नाना प्रकार से विलाप करते हुए, दुःख से व्याकुल पुरवासी अयोध्या में लौट आये। और १४वर्ष पीछे श्रीरामजी फिर आयेंगे इसी आशा पर प्राणों को रखा।

शिक्षा—हम सब को भी अपने गुणवान् राजा के साथ अयोध्या की प्रजा की भांति ही प्रेम करना चाहिए।

आचार्य-(गुरु) भक्ति

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ ले विप्र समाजा ॥
करि दण्डवत मुनिहिं सन्मानी। निज आश्रम बैठारेहु आनी ॥

मुनि विश्वामित्र जी का आगमन सुन कर राजा दशरथ ने मंत्री वर्गों के साथ उनका स्वागत किया और प्रणाम कर सन्मान पूर्वक अपने आसन पर लाकर बिठलाया।

चरण पखारि कीन्ह अति पूजा। मो सम आज धन्य नहिं दूजा ॥
विविध भांति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हर्ष अति पावा ॥

मुनि के चरण धोकर महाराज ने कहा महात्मन् आप के आगमन से मैं कृतार्थ हो गया पुनः अति स्वादिष्ट भोजन कराये जिस से मुनि के हृदय में अति हर्ष हुआ।

पुनि चरणन मेले सुत चारी। राम देखि मुनि विरति बिसारी ॥
भये मगन देखत मुख शोभा। जिमि चकोर पूरण शशिलोभा ॥

फिर राजा के चारों पुत्र मुनि के चरणों में पड़ गये जिनको देख कर मुनि का सांसारिक प्रेम बढ़ गया और श्रीराम के सुन्दर मुख मंडल को देख कर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देख कर चकोर।

तब मन हर्षि वचन कह राऊ। मुनि अस कृपा कीन्ह नहिं काऊ ॥
केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावहु बारा ॥

इसके बाद मनमें प्रसन्न हो राजा ने कहा हे मुनि! आपने बड़ी कृपा की। जिस कारण आप का आना हुआ वह आज्ञा कीजिये।

असुर समूह सतावहिं मोहीं। मैं याचन आयऊँ नृपतोहीं ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशि चरवध मैं होवस नाथा ॥

विश्वामित्र ने कहा हे राजन्! मुझे राक्षस बहुत सताते हैं। इस लिए लक्ष्मण सहित श्रीराम को आप मुझे दीजिये जिस से

अवसर पाकर भी जो मैं वनको न जाऊं, तो मुझसे अधिक कौन मूर्ख होगा।

अंबएकदुःखमोहिंविशेषी। (खी) निपटनिकलनरनायक देखी॥
थोरहिबातपितहि दुःखभारी। होति प्रतीत न मोहिं महतारी॥
शपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥

हे माता! इस छोटी सी बात के लिए पिता जी को इतना व्याकुल देखकर मुझे बहुत दुःख होने के साथ विश्वास नहीं होता कि पिता जी के आकुल होने का कारण केवल यही है या कुछ और। यह सुन केकई ने भरत और श्रीराम की शपथ पूर्वक कहा हे राम! इसके सिवाय महाराज के दुःख का और कोई कारण नहीं है। तब श्रीराम जी कौशिल्यादेवी के समीप वन जाने की आज्ञा मांगने के लिये गये।

(श्रीराम का माता कौशिल्या से आज्ञा मांगना)

रघुकुलतिलकजोरिदोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
दीन्ह अशीश लाइ उर लीन्हे। भूषण वसन निछावर कीन्हे॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लग्न मुद मंगल कारी॥
तात जाऊं बलिवेगिन हाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥

रामचन्द्र ने हाथ जोड़ प्रसन्न हो माताके चरणों में सिर नवाया तब माता ने अशीश दे हृदय से लगा भूषण और वस्त्र न्योछावर कर कहा। हे पुत्र? कहो तुम्हारे अभिषेक की मंगलकारी लग्न कब होगी? हे तात? शीघ्र स्नान कर कुछ इच्छानुकूल मिष्ठान्न भोजन करलो।

मातु वचन सुन अति अनुकूला। जनु सनेह सुर तरुके फूला॥
सुख मकरन्द भरे श्रीमूला। निरखि राम मन भ्रमर न भूला॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भांति मोरबड़काजू॥
आयसु देहु मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह वश डरपसि भोरे। आनन्द अम्ब अनुग्रह तोरे॥

वर्ष चारदश विपिनबस, करौं पितु वचन प्रमान।
आय पांय पुनि देखिहो, मन जनि करसि मलान॥

श्रीराम ने माता के स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल, सम्मति के मूल सुखरूपी मकरंद के रससे युक्त श्रेष्ठ वचनों को सुन भौंरेरूपी मन से न भुला कर कोमल वाणी से कहा हे माता! पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है जहां सब भांति से मेरा उपकार होगा आप भी प्रसन्न हो मुझे आज्ञा दीजिये जिससे मेरा वन में सब प्रकार से कल्याण हो। स्नेह वश आप व्याकुल न होवें आप की कृपा से सब आनन्द ही होंगे। हे माता! पिताजी की आज्ञासे १४ वर्ष वनमें रह फिर लौट कर शीघ्र ही आपके दर्शन एवं सेवा करूंगा।

वचन विनीत मधुर रघुवरके। शरसम लगे मातुउर करके।
कहि न जाय कछु हृदय विषादू। मनहु मृगी सुनि केहरिनादू।

श्री राम के प्रीति भरे मधुर वचन माता के हृदय में वाणों के समान लग करकने लगे। हृदय का दुःख कहा नहीं जाता। जिस प्रकार सिंह नाद सुनकर हरिणी दुःखी होती है यही दशा कौशिल्या की होगई।

नयन सजल तनुथरथर कांपी। मांजहिखाय मीन जनुमापी।
धरि धीरज सुतवदन निहारी। गद्गदवचन कहति महतारी।

आखों में जल भरि आया शरीर थरथर कांपने लगा और ऐसे व्याकुल होगई जैसे मांजा खाय के मछली। फिर धीरज धर पुत्र का मुख देखकर गद्गदकण्ठ से बोली।

तातपितहि तुम प्राणपियारे। देखमुदित नित चरिततुम्हारे।
राज्यदेनकहं शुभदिनसाधा। कहेउजान वनकेहि अपराधा॥

हे पुत्र! तुम तो पिता के प्राणों के समान प्यारे थे तथा वे तुम्हारे चरित्रों को देखकर नित्य ही प्रसन्न होते उसी से राज्य देने को यह शुभ दिन नियत किया फिर हे पुत्र! किस अपराध से तुम्हें वन जाने को कहा।

निरखि रामरुख सचिवसुत, कारण कहेउ बुझाय।
सुनि प्रसंग रहिमूकजिमि, दशाबरणि नहिं जाय॥

तब श्री रामचन्द्र जी का इशारा पाकर सुमित्रा के पुत्र अभि-नन्दन ने सब कारण कह सुनाया। जिसे सुनते ही कौशिल्या गूंगे के समान चुप होगई।

धर्म सनेह उभय मतिघेरी। भइ गति सांप छछूंदरकेरी।
राखौं सुतहिं करौं अनुरोधू। धर्मजाय अरु बंधु विरोधू॥

धर्म और स्नेह के कारण कौशिल्या देवी की गति सांप छछूंदर कीसी होगई वे विचारने लगीं कि यदि स्नेह और हठ से राम को वन न जाने दूं तो धर्म की हानि और भाइयों में विरोध होगा।

बहुरि समुझितियधर्म सयानी। राम भरतदोउ सुत समजानी॥
सरल स्वभाव राम महतारी। बोली बचन धीर धरिभारी।
तातजाऊं बलिकीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धर्म टीका॥

फिर पतिव्रत धर्म को विचार तथा राम और भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर सरल स्वभाव से कौशिल्या ने धीरज धर कहा हे पुत्र! बलिहारी जाऊं तुमने अच्छा किया, पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों में श्रेष्ठ है।

पितुबनदेव मातुबनदेवी। खगमृग चरण सरोरुह सेवी।
अंतहु उचित नृपहिबनवासू। वयविलोकि हियहोत हरासू॥

बनके देवता ऋषि और मुनि तुम्हारे पिता वनदेवी अर्थात् ऋषि मुनि पत्नियां तुम्हारी माता तथा बनमृग चरणों की सेवा करने वाले होंगे बेटा यद्यपि वृद्धावस्था में राजा को वानप्रस्थी होना उचित है परन्तु इस समय तुम्हारी सुकुमार अवस्था को देखकर मेरा चित्त घबड़ाता है।

बड़भागी बन अवध अभागी। जो रघुवंश तिलक तुम त्यागी।
जोसुत कहौं संग मोहिंलेहू। तुम्हरे हृदय होय संदेहू॥

हे राम तुम्हारे चले जाने से वन बड़भागी और अयोध्या अभागिनी है हे पुत्र जो मैं तुमसे कहूं कि मुझे संग ले चलो तो तुम्हारे मन में यह संदेह होगा कि स्त्री को पति सेवा करनी चाहिये पुत्र के संग क्यों जाय।

पूत परम प्रिय तुम सबहीके। प्राणप्राण के जीवन जीके॥

तेतुमकहहु मातुवन जाऊं । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊं ॥

हे पुत्र ! तुम सबके परमप्रिय प्राणों के प्राण तथा सम्पूर्ण जीवों के जीवन हो किसे २ संग लोगे । तुम जो कहते हो कि माता मैं वन जाता हूं यह सुन मैं पछिताती हूं ।

यह विचारनहिंकरहुंहठ, झूंठ सनेह बढाय ।
मानि मात करनात बलि, सुरतबिसर जनिजाय ॥

परन्तु झूंठा प्रेम बढ़ा हठ नहीं करती । बलिजाऊं हे पुत्र ! माता के नाते को जानकर मेरी सुरत मत भुलाय दीजो ।

देवपितर सब तुमहिं गुसांई । राखहिं पलक नयनकी नांई ।
अवधि अम्बुप्रिय परिजनमीना । तुप करुणाकर धर्म धुरीना ॥

हे पुत्र ! देवता और पितर तुम्हें ऐसे रक्खें जैसे पलक नेत्रों की रक्षा करते हैं । (चौदहवर्ष की अवधि वह जल और प्रिय परिवार मछली) । तुम करुणा की खानि और धर्मधुरी के धारण करने वाले हो ।

असे विचारि सोइ करहु उपाई । सबहिंजियत जेहिं भेंटहुआई ॥
जाहु सुखेन वनहिंवलि जाऊं । करि अनाथजन परिजनगाऊं ॥

ऐसा विचार कर वह उपाय करना जिससे सबके जीते ही आकर मिलो । हे पुत्र ! बलिजाऊं कुटुम्बियों तथा अयोध्या को अनाथ कर तुम सुखपूर्वक वन में जाकर निवास करो ।

जिस समय रामचन्द्रजी वनसे लौटकर आये उस समय सबसे पहिले कैकयी के घर गये ।

प्रभु जानी कैकयी लजानी । प्रथम तासु गृह गये भवानी ॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । तब निज भवन गवन प्रभुकीन्हा ॥

महादेवजी ने पार्वती से कहा हे पार्वती ! रामचन्द्रजी ने यह जाना कि कैकयी बहुत लज्जित हुई है इस कारण सबसे पहिले उस के घर को ही गये और अनेक प्रकार से ज्ञान दे केकई को प्रसन्न कर कौशिल्या जी के पास गये ॥

शिक्षा—धर्मात्मा रामकी तरह प्रत्येक को अपने माता एवं पिता की आज्ञा का पालन तन मन और धन से कर उन का सच्चा भक्त रहना चाहिये ।

भ्रातृ भक्ति
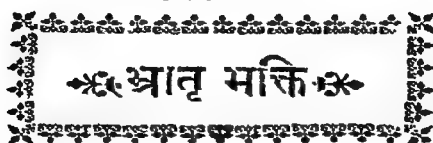
समाचार जब लछमण पाये । व्याकुल बिलखि वदन उठि धाये ।
कंप पुलक तनु नयन सनीरा । गहे चरण अति प्रेम अधीरा ।

रामचन्द्र जी के वन जाने के समाचार जब लक्ष्मण जी ने सुने सो व्याकुल होकर रामचन्द्र के पास गये उस समय उनका शरीर काप रहा नेत्रों में आंसू भरे थे इस प्रकार प्रेम से अधीर हो उन्होंने रामजी के पैरों को पकड़ लिया ।

कहि न सकत कछु चितवतठाढ़े । मीनदीन जनु जलते काढ़े ॥
राम विलोकि बन्धु कर जोरे । देह गेह सब सनतृण तोरे ॥

फिर चुप चाप उठकर श्रीराम जी की ओर देखने लगे । लक्ष्मण कुमार ऐसे व्याकुल थे, जैसे जल से बाहर फेंकी हुई दीन मछली । श्रीराम लक्ष्मण को राजवैभव तथा अपने शारीरक सुख दुःख की चिंता से अलग हाथ जोड़े खड़े हुए देख बोले—

मातु पिता गुरु स्वामि शिख, शिरधर करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय ॥

हे लक्ष्मण! माता पिता गुरु और स्वामी की शिक्षा को जो सिर पर धारण करते हैं अर्थात् विनय पूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करते हैं उन्हीं का जन्म सफल है तथा आज्ञा का उल्लङ्घन करने वालों का जन्म जगत में निरर्थक ही है ।

असजिय जानि सुनहु शिष भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपु सूदन नाहीं । राउ वृद्ध ममदुख मन माहीं ॥

ऐसा जान कर हे भाई माता पिता की सेवा करो यही मेरी शिक्षा है घर में भरत और शत्रुघ्न भी नहीं हैं, महाराजा वृद्ध और मेरे दुःख से दुःखी हैं ।

मैं वन जाऊँ तुमहिं ले साथा । है हैं सब विधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सबकहँ परइ दुसह दुःखभारू ॥

जो मैं तुम्हें वनको साथ ले चलूँ तो अयोध्या सब भांति अनाथ हो जावेगी, और गुरु पिता माता प्रजा परिवार सब को बड़ा दुःख होगा।

रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरूतात होइ है बड़ दोषू ॥
रहहु तात असनीति विचारी । सुनत लषण भये व्याकुलभारी॥

भाई तुम यहां रह कर सबको समझाते रहना नहीं तो हे तात ! बड़ी बुराई होगी ऐसा सोच तुम घर पर ही रहो। लक्ष्मण जी यह सुन बहुत दुःखी हुए और ज्यों त्यों धीरज धर श्रीराम से बोले—

दीन्ह मोहिं शिखनीक गुसाईं । लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नर वर धीर धर्म धुर धारी । निगम नीति केते अधिकारी ॥
धर्म नीति उपदेशिय ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम वचन चरण रतिहोई । कृपा सिन्धु परिहरिय किसोई॥

हे महाराज ! आपकी शिक्षा अवश्य माननी है। परन्तु जो जन केवल धर्म, कीर्ति और ऐश्वर्य के चाहने वाले हैं। वेही आप के वेद एवं नीति से युक्त उपदेश मय वचन पालन के अधिकारी है, मैं तो किसी प्रकार के वैभव की इच्छा न कर केवल आप के चरणों की ही सेवा करना चाहता हूं अस्तु यदि आप मुझे सच्चा सेवक जानते हैं तो मुझे साथ ही ले चलिये।

करुणा सिन्धु सुबन्धु के, सुनि मृदुवचन विनीत ।
समुझाये उरलाय प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥

करुणा सागर रामने श्रेष्ठ भाई के उपरोक्त कोमल तथा नम्र वचनों को सुन स्नेह से हृदय से लगा कर कहा।

मांगहु विदा मातु सनजाई । आवहु वेगि चलहु वन भाई ॥

हे लक्ष्मण ! जाओ अपनी माता से विदा लेके शीघ्र आओ और मेरे साथ वन चलो।

(सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश)

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारी मातु बैदेही । पिता राम सब भांति सनेही ॥

जिस समय सुमित्रादेवी ने लक्ष्मणके वचनों को सुना उस समय यद्यपि उनको अत्यन्त दुःख हुआ । तो भी धीरज धर कोमल वाणी से कहा हे पुत्र तुम्हारी माता जानकी और सब प्रकार से तुम से प्रेम करने वाले श्रीराम तुम्हारे पिता हैं ।

अवध तहां जहँ राम निवासू । तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकाशू ॥
जोपै सीयराम वन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥

जिस प्रकार जहां सूर्य का प्रकाश होता है वहां ही दिन होता है उसी प्रकार जहां राम निवास करें वहां ही अवधपुरी है जो सीता और राम वनको जाते हैं तो हे पुत्र तुम्हारा अयोध्या में क्या काम अर्थात् तुम भी साथ जाओ ।

गुरु पितु मातु बन्धु सुरसाईं । सेइ ये सकल प्राण कीनाईं ॥
राम प्राण प्रिय जीवन जीके । स्वारथ हित सखा सबही के ॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता स्वामी इनकी प्राणों के समान सेवा करना चाहिए राम तो प्राणों के प्यारे और जी के जीवन तथा स्वारथ रहित सबके मित्र हैं ।

अस जिय जानि संग वन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

ऐसा विचार हे पुत्र ! तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता राम के साथ जा कर जीवन को सफल करो ।

भूरि भाग्य भाजन भयउ, मोहिं समेत बलि जाऊँ ।
जो तुम्हारे मन छांड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाऊँ ॥

मेरे सहित तुम बड़े भाग्य के पात्र हुये (मैं बलिहारी जाऊँ) जो तुम ने छल छोड़ कर राम के चरण कमल में मन लगाया ।

राग रोष ईर्षा मद मोहू । जानि स्वप्न इनके वश होहू ॥
सकल प्रकार विकार विहाई । मनक्रम वचन करहु सेवकाई ॥

हे पुत्र ! राग, क्रोध, ईर्षा मद मोह आदि विकारों दोषों को छोड़ कर मन वचन कर्म से राम की सेवा करना ।

तुम कहँ बन सब भांति सुपासु । संग पितु मातु राम सियजाशु ।
जेहि न राम बन लहहिं कलेशू । सुत सोइ करहु यहै उपदेशू ॥

मातु चरन सिरनाय, चले तुरति शंकित हिये ।
बागुर विषम तुराय, मनहु भाग मृग भागवश ॥

राम और जानकी तुम्हारे पिता और माता के समान हैं इसलिये तुम सब भांति बन में सुखी होगे। जिस प्रकार रामचन्द्र बन में कलेश न पावे हे पुत्र ! वही काम करना यही मेरा उपदेश है, इतना सुन लक्ष्मण कुमार माता के चरणों में सिर नवाकर शंकित हृदय से (शंकित हृदय का यह कारण कि कहीं माता फिर मने न करदे) इस प्रकार चले जैसे कठिन जाल को तोड़ कर मृग भाग जाता है ।

शिक्षा—सुमित्रा के समान ही प्रत्येक माता को अपने पुत्रों के लिये धर्म का उपदेश करना एवं बड़ों का पूज्य बनाना उचित है ।

भरतजी का सच्चा त्याग
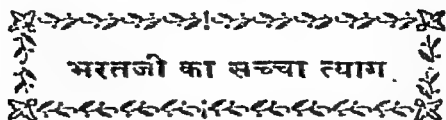
छल विहीन शुचि सरल सुवानी । बोले भरत जोरि जुगपानी॥

श्री भरत जी ने हाथ जोड़ छल रहित पवित्र सीधी वाणी से कहा । हे माता ! कौशिल्या

जो अघ मात पिता गुरु मारे । गाय गोठ महि सुरपुर जारे ॥
जो अघ तिय बालक वध कीन्हे । मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥

जो पाप माता, पिता, गुरु, के मारने, गाय, गोठ (गौशाला) पृथिवी, ब्राह्मण और देवताओं के मन्दिर जलाने से होता है । तथा जो पाप स्त्री और बालक के मार डालने से लगता है वा सब मुझे लगे जो मेरा मत राम को वन भेजने का हो । यदि श्रीराम को वन भेजने में मेरी थोड़ी भी सम्मति हो तो

जे पातक उपपातक अहहीं । कर्म वचन मन भवकवि कहहीं ॥
ते पातक मोहिं होउ विधाता । जो यह होय मोर मत माता ॥

मन वचन कर्म से उत्पन्न होने वाले झूँठ कपट आदि उपपातक और ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी आदि सब पातक ईश्वर मुझे लगावे

जेपरि हरि हरि हर चरन, भजहिं भूत गण घोर ।
तिनकी गति मोहिं देउ विधि, जो जननी मत मोर॥

हे माता यदि श्रीराम को वनोवास देने में मेरी सम्मति हो तो उपासनीय ईश्वर को छोड़ जो दूसरों की पूजा करते हैं । उनकी जो गति होती है वही मेरी भी हो ।

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं । पिशुन पराव पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी । वेदविदूषक विश्व विरोधी ॥
लोभी लंपट लोलुप चारा । जे ताकहिं पर धन पर दारा ॥
पावऊँ मैं तिन कर गति घोरा । जो जननी यह सम्मति मोरा॥

वेद के बेचने वाले धन लेकर वेद पढ़ाने वाले कन्या बेचने वाले धर्म के दुहहने वाले, चुगली खाने वाले, पराया पाप कहने वाले, कपटी, कुटिल, क्लेश करने हारे, क्रोधी, वेदनिन्दक, संसार के विरोधी, लोभी, ठग, लालची, लोलुप, चंचल, पराये धन और स्त्रियों को तकने वाले की जो गति होती है वही मेरी हो, जो मैंने श्रीराम को धन भेजने को कहा हो।

जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ विमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिनहिं न हरिहर सुयश सुहाई॥
तजि श्रुति पंथ वामपथ चलहीं। वंचक विरचि वेष जग छलहीं॥
तिन्ह की गति शंकर मोहिं देऊ। जननी जो यह जानो भेऊ॥

हे पूजनीय माता! जो मैं इस भेद को भी जानता होऊँ, तो श्रेष्ठ पुरुषों से प्रेम न करने वाले परमार्थ से विमुख अभागी, और मनुष्य शरीर पाकर ईश्वर की आज्ञा न मानने तथा उसकी महिमा को न सुनने एवं वेद मार्ग को छोड़ने तथा ठगों का वेष बना संसार को छलने वालों की जो गति होती है वही मेरी भी हो।

मन वचन कर्म कृपा यतन कर दास मैं सुनु मातुरी।
उर वसत राम सुजान जानत प्रीति और छल चातुरी॥

हे माता! मैं तो मन वचन और कर्म से रामचन्द्र का दास हूं वह स्वयं सब के हृदय की जानने वाले स्नेही तथा छल और चतुराई के जानने वाले हैं।

शिक्षा-तपस्वी भरत के सदृश हमारे भारतीय भाई यदि न्याय पूर्वक अपनी सम्पत्ति का निबटारा स्वयं ही कर लिया करें। तो अदालतों में व्यर्थ धनादि का व्यय और संसार में अपयश के भागी तो न बनें?
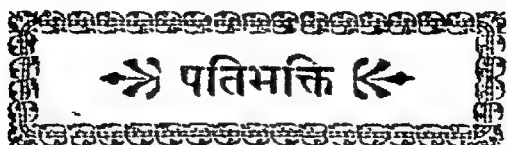
समाचार तेहि समयसुनि, सीय उठी अकुलाय।
जाय सास पद कमल युग, वंदिबैठि शिरनाय॥

रामचन्द्र के वन जाने के समाचार जब सीता जी ने सुने तो दुःखी हो सास के पास आकर चरणों में सिर नवाय बैठी।

दीन्ह अशीश सास मृदुबानी, अति सुकुमारि देखि अकुलानी।
बैठिनमित मुखशोचति सीता, रूपराशि पतिप्रेम पुनीता॥

सास ने कोमल वाणी से आशीस दी। अत्यन्त सुकुमारी सीता को राम के संग जाने की इच्छा देख व्याकुल होगई। उस समय रूपराशि पति का पवित्र प्रेम धारण करने वाली सीता जी सोचने लगीं।

चलन चहत वन जीवन नाथा, केहिसुकृती सन होइहि साथा।
कीतनुप्राणकि केवल प्राना, विधि करतब कछु जात न जाना॥

जीवन के नाथ रघुनाथ वन को जाया चाहते हैं सो जाने कौन से सुकृत से उनका साथ होगा क्या शरीर और प्राण अथवा केवल प्राणों से ही रघुनाथ का साथ होगा विधाता का करतब कुछ जाना नहीं जाता। इस प्रकार के विचार करते हुए—

मञ्जुविलोचन मोचतवारी। बोली देख राम महतारी।
तातसुनहु सिय अतिसुकुमारी। साससशुरपरि जनहिं पियारी।

सीताजी के उज्ज्वल नेत्रों से आंसू निकलने लगे यह देख रामचन्द्र की माता ने कहा हे राम! जानकी अति ही सुकुमारी और सास ससुर तथा कुटुम्बियों को प्यारी हैं।

पिता जनकभूपाल मणि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रविकुल कैरव विपिन, विधुगुण रूप निधान॥

मैंपुनि पुत्रवधू प्रियपाई । रूपराशि गुण शील सुहाई ।
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउ प्राण जानकिंहि लाई ॥
सोइसिय चलनचहत वनसाथा । आयसु कहा होइ रघुनाथा ।
चन्द्रकिरणि रसरासि चकोरी । रविरुख नैनसकै किमिजोरी ॥

राजाओं में श्रेष्ठ जनक जिनके पिता सूर्य्य सदृश तेजस्वी महाराज दशरथ जो जिनके ससुर एवं सूर्य्यवंशी कमल के खिलाने वाले चन्द्ररूपी, गुण की खान राम जिनके पति–तथा रूप की राशि गुण और शील शिरोमणि जो सीता मेरी पुत्रवधु है–जिसको आज तक मैंने नयनों की पुतली तथा प्राणों के समान रखा, है–वही मैथिली तुम्हारे साथ वन को जाना चाहती है इसमें तुम्हारी क्या आज्ञा है भला जो चकोर चन्द्रमा की किरण को चाहती है वह सूर्य्य के सन्मुख अपने नेत्रों को कैसे कर सक्ती है।

वनहित कोल किरात किशोरी । रचीविरंचि विपय सुखभोरी ॥
पाहन कृमिजिमिकठिन स्वभाऊ । तिनहि कलेश न काननकाऊ॥
कैतापसतिय कानन योगू । जिन तपहेतु तजा सब भोगू ॥

हे राम ईश्वर ने विपय सुख से भोरी कोल और किरातो की कन्याओं को वन के लिये बनाया है–क्योंकि पापाण के कीड़े सांप बिच्छू आदि के समान जिनका कठोर स्वभाव है उन्हें मन में कुछ भी क्लेश नहीं होता। अथवा जिन्होंने तप करने के लिये सांसारिक भोगों को छोड़ दिया है ऐसी ऋषि मुनि पत्नियां वनवास करने के योग्य होती हैं।

असं विचार जस आयसु होई । मैं शिख देऊं जानकिहिसोई ॥
जोसिय भवन रहइकह अंबा। मोहि कहंहोइ प्राण अवलंबा ॥

यह विचार जैसा कहो वैसी मैं जानकी को सीखदूं। यदि जानकी घर रहेगी तो मुझे प्राण रखने को सहारा हो जावेगा।

सुनि रघुवीर मातु प्रियवानी । शील सनेह सुधा जनु सानी ॥
राजकुमारि शिखावन सुनहू । आन भाँति जियजनिकछु गुणहू॥

शील और सनेह रूपी अमृत में सनी माता की प्रियवाणी को

सुनकर रामचन्द्र ने कहा हे राजकुमारी ! मन में कुछ और न समझ कर मेरी शिक्षा मानो।

आपन मोर नीक जो चहहू। वचन हमार मान घर रहहू॥
आयसु मोरि सासु सेवकाई। सबविधि भामिन भवन भलाई॥

जो अपना और मेरा भला चाहती हो तो मेरा कहा मान घर रहो और मेरी आज्ञा से सास की सेवा करना घर रहने में ही सब प्रकार की भलाई है।

यहिते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सासुश्वसुर पद पूजा॥
जबजब मातुकरहिं सुधि मोरी। होइहि प्रेम विकल मतिभोरी॥
तबतब तुम कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समझायहु मृदुबानी॥
कहो स्वभाव शपथ शत मोहीं। सुमुखि मातुहित राखों तोहीं॥

क्योंकि सास ससुर की सेवा करने के बराबर दूसरा धर्म नहीं है। जब २ माता मेरी सुधि करे और प्रेम से उनका चित्त व्याकुल हो जाय तब २ कोमल वाणी से पुरानी कथा कह २ कर समझाना हे सुमुखि ! स्वभाव से सौगन्ध करके कहता हूं कि माता के हित के कारण ही तुम्हें यहां रखता हूं।

मैं पुनिकरि प्रमाण पितुबानी। वेगि फिरबसुन सुमुखि सयानी।
दिवस जात नहिं लागहि वारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा॥

मैं पिताजी की आज्ञा का पालन कर हे सुमुखि ! शीघ्र ही लौट कर आऊंगा हे सुन्दरि ! दिन जाते देर नहीं लगती अतएव हमारी शिक्षा मान घर रहो॥

जो हठकरहु प्रेमवश वामा। तोतुम दुख पावहु परिणामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोरघाम हिमवारि वयारी॥
कुश कंटक मग कंकर नाना। चलव पयादे विनुपदत्राणा।
चरण कमल मृदुमंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥

भूमिशयन वल्कलवसन, अशनकंद फलमूल।
तेकि सदा सबदिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥

नर अहार रजनीचर करहीं । कपट वेषविधि कोटिक धरहीं ॥
लागइ अति पहाड़कर पानी । विपिन विपति नहिं जाय बखानी ॥
रहहु भवन असहृदय विचारी । चन्द्रवदनि दुख कानन भारी ॥

जो तुम प्रेम से इस समय हठ करोगी तो अन्त में दुःख पाओगी । वन का मार्ग अत्यन्त कठिन और भयङ्कर है तथा मार्ग में बड़ी धूप, जाड़ा, पानी और वायु से दुःख मिलेगा । मार्ग में कुश, कांटे, और कंकर होते हैं और तुम्हें विना जूते के नंगे पैरों चलना पड़ेगा तुम्हारे पैर उज्ज्वल और कोमल हैं रास्ता ऊंचा नीचा होगा तथा बड़े २ पर्वत बड़े चढ़ाव उतार के पड़ेंगे । भूमि में सोना, वृक्ष की छाल पहरना, फल, मूल और कन्द के भोजन यह भी सब दिन नहीं किन्तु कभी २ मिलेंगे । हे प्यारी ! वन की विपत्तियों को कहां तक कहूं । मनुष्यों के खाने वाले अनेक प्रकार के कपट वेष बनाये राक्षस वन में रहते हैं । पहाड़ का पानी बहुत लगने वाला होता है । इन बातों को विचार, हे चन्द्रवदनि ! तुम घर ही रहो ।

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुमविन रघुकुल कुमुदविधु, सुरपुर नरक समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासुश्वसुर गुरुसज्जन सहाई । सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ॥
जहंलगिनाथ नेहअरुनाते । पियविनु तिय तरणिहु ते ताते ॥
तनुधन धामधरणिपुर राजू । पति विहीन सब शोक समाजू ॥
भोगरोग समभूषण भारू । यमयातना सरिस संसारू ॥
प्राणनाथ तुमविनु जग माहीं । मोकहं सुखदकतहु कोऊनाहीं ॥
जिय विनुदेह नदी विनवारी । तैसिय नाथ पुरुष विन नारी ॥
नाथसकल सुख साथ तुम्हारे । शरद विमल विधुवदन निहारे ॥

हे प्राणनाथ ! हे करुणानिधान सुखसागर ! हे रघुवंश रूपी बबूले के खिलाने वाले चन्द्र ! मुझे आपके विना अयोध्या तो क्या सुरपुर भी नरक के समान है ॥ माता, पिता प्रियभाई, प्यारे कुटुम्बी और हितकारी सास, ससुर, गुरु, सज्जन सहायता करने वाले,

पुत्र, शीलवान, सुखदेने वाले, हे स्वामी ! जहां तक नेह और नाते हैं वे सब पति के बिना स्त्री को सूरज से भी अधिक गरम हैं तथा शरीर, धन, धाम, पृथिवी, पुरका राज्य पति के बिना सब शोक का समाज है। पति के बिना भोग रोग के सदृश गहने बोझ के तुल्य और संसार यम यातना के समान है हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मुझे सुखी कर सके।

खगमृग परिजन नगरवन, वलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परणशाल सुखमूल ॥
वनदेवी वनदेव उदारा। करिहैं सासश्वसुर समसारा ॥
कुशकि शलय साथरी सुहाई। प्रभुसंग मंजुमनो जहुराई ॥
कदमूल फल अमिय अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
क्षणक्षण प्रभुपदकमल विलोकी रहिहौं मुदितदिवस जिमिकोकी।
वनदुःख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु वियोग लवलेश समाना। होहिं नसवमिल कृपानिधाना ॥
असजियजान सुजान शिरोमनि। लेइय संगमोहिं छाडियजनि।
विनती बहुत करोंका स्वामी। करुणामयउर अंतर्यामी ॥
राखिय अवध जो अवधलगि, रहतजानि ये प्रान।
दीनबंधु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान ॥
मोहिंमगुचल तन होइहिहारी। क्षणक्षण चरणसरोज निहारी।
सबहि भांति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रमहरिहौं ॥

खगमृग कुटुम्बी, नगर के समान वन, वल्कल रेशमी वस्त्रों के तुल्य, और वन की पर्ण कुटी देवताओं के घर के समान सुखदायक वन के देवता और देवी (ऋषि मुनि और उनकी पत्नियां) सास ससुर के समान रक्षा करने वाले तथा पत्तों की साथरी (शय्या) कामदेव की सेज के तुल्य होगी। वनके कन्दमूल और फलों का आहार ही अमृत सदृश तथा पहाड़ अवध के राजमहल की अटारी के समान होगी। प्रतिक्षण आपके चरण कमलों को देखकर मैं इस प्रकार प्रसन्न रहूंगी जैसे दिन में चकवा और चकवी। हे प्रीतम ! भय विषाद और परिताप के भरे तुम ने बहुत कहे परन्तु हे कृपा-

निधान वे सब मिलकर के भी तुम्हारे वियोग रूपी दुःख की बराबरी नहीं कर सकते। ऐसा जानके हे जानने वालों में श्रेष्ठ ! आप मुझे संग ले चलिये यहां मत छोड़िये। हे स्वामी ! आसे बहुत क्या विनती करूं आप दयामय, अन्तरयामी और मेरे मन की जानने वाले हैं दीनबन्धु ! आप सुन्दर सुख के देने वाले तथा शील और सनेह के पात्र हैं अतएव जो १४ वर्ष तक मेरा प्राण अवध में रहता जानों तो छोड़ जाइये नहीं तो संग ले चलिये मैं पैरो चलते नहीं थकूंगी। क्योंकि प्रतिक्षण आपके चरण कमलों का दर्शन होता रहेगा। हे प्राणप्रिय ! सब प्रकार से आपकी सेवा करूंगी और आपके मार्ग चलने के परिश्रम को हरूंगी।

पांयपखारि बैठतरु छाहीं। करिहौं बायु मुदित मनमाहीं ॥
श्रमकन सहित श्यामतनु देखे। कह दुखसमउ प्राणपति पेखे ॥

जब आप सुन्दर वृक्ष के नीचे बैठेंगे तो चरणों को धोय प्रसन्न हो हवा करूंगी। पसीने के बिन्दु सहित तुम्हारा श्याम शरीर देख कर मुझको दुःख नहीं होगा।

सममहि तृणतरु पल्लवडासी। पांयप लोटिहि सबनिशि दासी ॥
बारबार मृदुमूरति जोही। लागहि ताप बयारिन मोही ॥

बराबर भूमि में वृक्षों के कोमल पत्ते बिछाकर यह दासी रात को पांव दावेगी। बारम्बार आपकी कोमल मूर्ति को देख मुझे गरम हवा भी नहीं सतावेगी॥

कोप्रभुसंग मोहिंचितवनि हारा। सिंहवधुहि जिमिशशक सियारा।
मै सुकुमार नाथबन योगू। तुमहिं उचित तपमोकहु भोगू ॥

जैसे सिंहनी को खरगोश और गीदड़ नहीं देख सकते वैसे आपके संग मुझपर कौन दृष्टि डाल सकेगा। मेरे समान क्या आप सुकुमार नहीं हैं क्या मैं भोग करने और आपही तप करने योग्य हैं।

ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जोनहृदय बिलगान।
तौ प्रभुविषम वियोग दुख, सहिहै पामर प्रान ॥

ऐसे कठोर वचन सुनके जो मेरा हृदय तो आप के असक्त

वियोग को क्या यह पामर प्राण सहन करेंगे अर्थात् नहीं। आपका वियोग होते ही मेरा प्राणान्त हो जावेगा।

अस कहिसोय विकल भइभारी। वचन वियोग नसकी संभारी।
देखि दशा रघुपति जियजाना। हठराखे राखे नहिं प्राना॥

ऐसा कह जानकी बड़ी व्याकुल हुई और प्रत्यक्ष वियोग की कौन कहे वचन के वियोग को भी न सम्हार सकी। यह दशा देख राम ने मन में जाना कि हठ करने से जानकी प्राण नहीं रक्खेगी।

कहेउ कृपालु भानु कुलनाथा। परिहरि शोच चलहुबन साथा॥
नहिं विषाद कर अवसर आजू। वेगिकरहु वनगमन समाजू॥

अतएव कृपासागर रामने कहा हे प्रिये! जो ऐसा है तो शोक को त्याग दुःख को दूर कर शीघ्र वन चलने की तय्यारी करो।

कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई। लगे मातुपद आशिष पाई।
वेगि प्रजा दुख मेटहु आई। जननी निठुर विसर जनि जाई॥

रामने प्यारे वचनों से सीता को समझा कर माता के चरणों में प्रणाम किया आशीश देकर माता ने कहा—शीघ्र ही आकर प्रजा का दुःख मेटना और निठुर माता को मत भूल जाना (सीता जी ने भी सास के पैरों को छूकर अपने पति के साथ वन यात्रा की)

शिक्षा—महारानी सीता के समान प्रत्येक स्त्री को अपने पति देव की सेवा तन और मन से करनी चाहिये तभी वह सती कहला सकती है।

नारि धर्म

पारवती की माता ने कहा—

करहु सदा शंकर पद पूजा । नारि धर्म पति देव न दूजा ॥

हे पुत्री पार्वती ! शिवजी के चरण कमलों की सेवा करना क्यों कि स्त्रियों का पति ही देवता और उसकी सेवा करना परमधर्म है

(सीता की माता का उपदेश)

होइहु संतत पियहि पियारी । चिर अहि वात अशीश हमारी ॥
सासुश्वसुर गुरु सेवा करहु । पति रुख लखि आयसुअनुसरहु
अति सनेह वश सखी सयानी । नारिधर्म सिखवहिं मृदुवानी ॥

हे पुत्रि सीता ! सदा पिया की प्यारी रहो और बहुत दिनोंतक तुम्हारा सुहाग रहे यही हमारी आशीश है । सास ससुर की सेवा और पति की आज्ञा पालन करना ही तुम्हारा धर्म है, इसी प्रकार अन्य सखियों ने भी नारी धर्म की शिक्षा दी ।

(अनुसुइया का सीता जी को उपदेश)

कह ऋषि वधु सरल मृदुवानी । नारिधर्म कछु व्याजबखानी ॥
मातु पिता भ्राता हितकारी । मित सुख प्रद सुन राजकुमारी ॥

ऋषि पत्नी अनुसुइया कोमल वाणी से नारि धर्म का वर्णन करती हुई बोली, हे राजकुमारी ! सुनो माता पिता भाई और हितु यह सब योग्यतानुसार सुख देने वाले हैं परन्तु—

अमित दानि भर्ता बैदेही । अधम सो नारि जो सेवन तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपति काल परखिये चारी ॥

हे जानकी ! स्वामी अनन्त सुख को देने वाला है इस पर भी जो स्त्री अपने स्वामी की सेवा नहीं करती वह अधम है । धीरज धर्म मित्र और स्त्री की परीक्षा आपत्ति के समय होती है ।

वृद्धरोग वश जड़ धन हीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाय यमपुर दुखनाना ॥

बूढ़े, रोगी, मूर्ख, दरिद्री, अंधा, बहरा, क्रोधी, और दुःखी पति का भी अपमान करने से अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं ।

एकै धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मनपति पद प्रेमा ॥
जग पतिव्रता चार विधि अहहीं । वेद पुराण सन्त असकहहीं ॥

काय वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना ही स्त्रियों का व्रत नियम और धर्म है । हे मैथिली वेद पुराण एवं श्रेष्ठजनों के कथनानुसार संसार में चार प्रकार की पति व्रतायें होती हैं ।

उत्तम के अस बस मनमाहीं । सपनेहु आन पुरुष जगनाहीं ॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥

उत्तम पतिव्रता स्त्रियों के तो मनमें यह बात बसी रहती है कि दूसरा पुरुष स्वप्न में भी जगत में नहीं है किन्तु सब स्त्री ही हैं और केवल मेरा पति ही पुरुष है । मध्यम पतिव्रता पराये पतियों को अपने भाई पिता और पुत्र की नाईं देखती हैं ।

धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं । सो निकृष्टतिय श्रुति अस कहहीं ॥
बिनु अवसर भय तेरह जोई । जानेहु अधम नारि जगसोई ॥

जो धर्म विचार कर अपना कुल समझ के रहती हैं । वे निकृष्ट हैं ऐसे ही वेदों में कहा गया है जो अवसर न मिलने से तथा कुल और गुरु जन के भय से अपने धर्म में रहती है वह जगत में अधम स्त्री हैं ।

पति वंचन परि पति रतिकरई । रौरव नरक कल्प शतपरई ॥

जो अपने पति को ठगकर परपुरुष से प्रीति करती हैं वह सौ कल्प तक दुःखों को भोगती हैं ।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छांड़ि छलगहई ॥
पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई । विधवा होय पाय तरुणाई ॥

जो छल छोड़ के पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं वह बिना परिश्रम परम गति को प्राप्त हो जाती हैं । और पतिसे प्रतिकूल आ-

चरण करने वाली स्त्रियां दूसरे जन्म में युवा वस्था प्राप्त होते ही विधवा हो जाती हैं।

नारि पतिव्रत जेहि घर माहीं। तेहि प्रताप नित अमर डराहीं॥

जिस घर में पति व्रता स्त्री होती हैं उसके प्रताप से देवता डरते हैं।

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादरतासु चरण सिर नावा॥

अनुसुइया के उपदेशको सुनकर सीताजी बहुत प्रसन्न हुईं और आदर पूर्वक अनुसुइया के चरण कमलों में सिर नवाया।

शिक्षा—अनुसुइया जी के कथनानुसार एवं श्रुति और स्मृतियों में बतलाये हुए (जिसका संग्रह हमारी बनाई गृहस्थाश्रम में सब से अच्छा है) धर्मों पर चलना स्त्री मात्र का परमधर्म है।
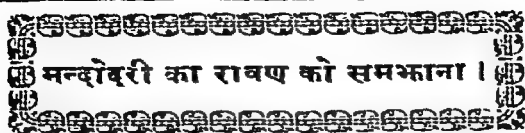
मन्दोदरी का रावण को समझाना ।

चरणनाइ शिरअंचल रोपा । सुनहु वचन पिय परिहरि कोपा ।

चरणों में सिरनवाय आंचल फैलाय मन्दोदरी ने कहा हे प्रीतम ! कोप को त्याग मेरे वचन सुनो ।

नाथ बैर कीजै ताही सों । बुधिबल जीति सकिय जाहीसों ।
तुमहिं रघुपतिहि अंतर कैसा । खलुखद्योत दिवाकर जैसा ॥

हे स्वामी ! बैर उसी से करना चाहिये जिसको बुद्धि और बल से जीत सको । तुममें और राममें इतना अंतर है जितना जुगनू और सूर्य्य में ।

अतिबल मधुकैटभ जिनमारा । महावीर दिति सुत संहारा ।

जिन्होंने महाबली मधु कैटभ हिरण्य कश्यप हिरण्याक्ष और राजा बलि आदि को मारा है उनसे शत्रुता करना उचित नहीं ।

रामहिं सोपहु जनकी, नाय कमल पदमाथ ।
सुतकहं राज्य देइवन, जाय भजहु रघुनाथ ॥

जानकी रामचन्द्र को सौंपदो और उनके चरण कमल में सिर नवाय पुत्रको राज्य दे वन में जाकर ईश्वर का भजन करो ।

नाथदीन दयालु रघुराई । बाघौ सन्मुख गये नखाई ॥
चाहिय करन सो सब करवीते । तुम सुरअसुर चराचर जीते ॥

हे नाथ ! रघुनाथ जी सदा दीनों के ऊपर दया करने वाले तथा शरणागत के पालक हैं । और देखो वेतो क्या बाघ भी सन्मुख आने से नहीं खाता । तुम्हें जो करना था वह सब कर चुके । तुमने देवता राक्षस और चराचर सब जीत लिये अथवा जो तुम्हें न करना चाहिये था वह भी तुमने कर लिया ॥

वेद कहहि असनीति दशानन । चौथेपनहि जाय नृपकानन ।
तासु भजन कीजै तहं भर्ता । जो कर्ता पालन संहर्ता ॥

हे स्वामी ! वेद में ऐसी नीति कही गई है कि चौथेपन में राजा वन में जाकर तप करे इसलिये हे नाथ ! जो संसार का उत्पन्न पालन और नाश करने वाला है उसका भजन अब वन में जाकर कीजिये।

असकहि लोचन वारिभरि, गहिपद कंपित गात।
नाथभजहु रघुवीर पद, ममअहि वात न जात॥

ऐसा कह मन्दोदरी ने रावण के चरण पकड़ लिये नेत्रों में जल भर आया और शरीर कांपने लगा। जैसे तैसे फिर कहा हे नाथ ! रघुनाथ जी के चरणों का भजन करो जिससे मेरा सुहाग न जावे।

पिय तेहिते जीतव संग्रामा। जाके दूतन केअस कामा॥
कौतुक सिंधुलांघि तव लंका। आयउ कपि केहरी अशंका॥
रखवारे हतिविपिन उजारा। देखत तुमहिं अक्ष जिनमारा।
जारिनगर जेहिं कीन्हे सचारा। कहा गया बलगर्व तुम्हारा।

हे स्वामी जिनका दूत कौतुक से ही समुद्र को लांघ लंका में चला आया और रखवालों को मार बगीचा उजाड़ा, तुम्हारे देखते देखते अक्षकुमार को मार डाला नगर को जला भस्म किया, उस समय तुम्हारा बल और घमण्ड कहां गया था—यह सब देखकर के भी तुम उनको जीतने की इच्छा रखते हो।

अवपति वृथा गाल जनि मारहु। मोरकहा कछु हृदय विचारहु।
पति रघुपतिहि मनुजजनिजानहु। अगजगनाथ अतुलबलमानहु॥

हे स्वामी ! अब वृथा गाल मत बजाओ मेरे कहे को हृदय में से विचारो। हे प्रीतम रघुनाथ जी को साधारण मनुष्य मत जानो वह पर्वत, वृक्ष और देवताओं (विद्वानों) के स्वामी तथा महाबली हैं।

बाण प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहु नीचा॥
जनकसभा अगणित महिपाला। रहेउ तहां बलगर्व विशाला॥

उनके बाण का प्रताप मारीच जानता था तुमने नीचता से उन का कहा नहीं माना देखो जनक की सभा में अनगिन्त राजाओं के

बीच तुमभी बल और गर्व से पूर्ण विद्यमान थे तौ भी तुम से पुरुषार्थ न हो सका और रामने—

भंजि धनुष जानकी विवाही । सक संग्राम जीतको ताही ।
सुरपति सुतजाना बलथोरा । राखा जियत आंख इक फोरा ॥

धनुष तोड़ जानकी को ब्याहा अब उन्हीं राम को कौन जीत सकता है। इन्द्र पुत्र जयन्त ने जाना कि इनमें बल थोड़ा है। उसकी ढिठाई पर प्राण दण्ड न देकर एक आंख फोड़दी।

शूर्पणखा की गतितुम देखी । तदपि हृदय नहिं लाज विशेषी॥

शूर्पणखा की गति तुमने देखी तो भी तुम्हारे हृदय में कुछ लाज नहीं आती।

वधिविराध खरदूषणहिं, लीला हतेउकबन्ध ।
वालि एकशर मारेउ, तेहिजानहु दशकंध ॥

विराध को मार खरदूषण का वध किया, कबन्ध को खेल से मार डाला। बाली का प्राण एक ही बाण में हर लिया है पति! उनके प्रभाव को जानो।

जेहिजल नाथ बंधायउ हेला । उतरे कपिदल सहित सुवेला ।
कारुणीक दिनकरकुल केतू । सचिव पठायउ तव हित हेतू ॥

जिसने कौतुक से समुद्र को बांध लिया, और बन्दरों की सेना सहित सुवेल पर्वत पर टिके हैं दयामय उन्हीं रामने तुम्हारे हित के लिये अपना मन्त्री भेजा ॥

सभा मांझ जेइं तव बल मथा । करि बरूथ महं मृगपति यथा ॥
अंगद अनुमत अनुचर जाके । रणबांकुरे वीर अतिबांके ॥

सभा के बीच में उसने तुम्हारा बल ऐसे मथा जैसे हाथियों के समूह को सिंह। रण के बांके वीर अंगद और हनुमान जिसके दास हैं।

तेहिकहं पिय पुनि २ नर कहहू । वृथा मान ममतामद गहहू ।
अहह कंतकृत राम विरोधा । काल विवश मनउपज न बोधा ॥

हे स्वामी, वृथा मान ममता तथा अहंकार के वश हो उन्हें तुम

साधारण मनुष्य कह रहे हो, काल के वशीभूत होने से ही श्रीराम से बैर करने को हठ करते और किसी का कहना नहीं मानते। किसी ने सत्य कहा है—

कालदंड गह काहु न मारा। हरे धर्म बल बुद्धि विचारा॥
निकट काल जेहि आव गुसाईं। तेहि भ्रमहोय तुम्हारी नाईं॥

काल किसी को लठिया लेकर नहीं मारता केवल बुद्धि, बल, धर्म और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिस के निकट काल आता है तुम्हारी तरह उसे भ्रम हो जाता है।

दुइसुत मारेउ दहेउ पुर, अजहुँ पूरि पिय देहु।
कृपासिंधु रघुवीर भजि, नाथ विमलयश लेहु॥

देखो तुम्हारे दो पुत्र मारे, पुर जलाया अबभी कुछ समझो अब भी मेरा कहा मानो हे नाथ! कृपासागर राम का आश्रय ले निर्मल यश के भागी बनो।

शिक्षा—महारानी मन्दोदरी की भांति प्रत्येक स्त्री को अपने पतिदेव के लिये यथा समय प्रत्येक विषय के हानि लाभ को विनय पूर्वक समझाना उचित है।

सीताजी और रावण

नाना विधिकहि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति दिखाई।

रावण ने सीता जी को नाना प्रकार की राजनीति, भय और प्रीति से मोहित करना चाहा परन्तु सती सीता ने कहा।

कह सीता सुन यती गुसांई। बोले वचन दुष्ट की नाईं।

हे गुसाईं ! तुम्हारे यह वचन दुष्टों के समान मालूम पड़ते हैं

तब रावण निज रूप दिखावा। भइ सभीत जब नाम सुनावा।
कह सीता धरिधीरज गाढ़ा। आयगये प्रभु खलरहु ठाढ़ा॥

तब रावण ने अपना असली रूप दिखाते हुए नाम बताया जिसको सुन सीता जी कुछ डरीं पुनः धीरज धर कहा खड़ा रह दुष्ट ! रामजी अभी आते हैं।

जिमिहरि वधुहि क्षुद्र शश चाहा। भयसिकालवश निशिचर नाहा।
वायसकर चहखगपति समता। सिंधु समान होय किमि सरिता॥

हे राक्षस ! जैसे सिंह की स्त्री को कोई छोटा खरगोश काल के वश हो पकड़े ऐसे ही तू मेरी इच्छा करता है। क्या कौआ गरुड़ की बराबरी और नदी समुद्र की समानता कर सकती है।

खरिकिहोइ सुर धेनु समाना। जाहु भवन निज सुन अज्ञाना।
सुनत वचन दशशीश लजाना। मनमें चरणवंदि सुखमाना॥

क्रोधवंत तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाय।
चलेउ गगन पथ आतुर, भयरथ होकिन जाय॥

क्या गधी कामधेनु के समान हो सकती है। हे अज्ञानी राजा अपनी कुशल चाहे तो सीधा घर को लौटजा। यह सुन रावण बहुत लज्जित हुआ और मन ही मन मैथिली को प्रणाम कर प्रत्यक्ष में क्रोध दिखाते हुए बल पूर्वक सीताजी को रथ में बिठा आकाश मार्ग से लंका को चला गया।

(अशोक वाटिका में सुन्दर वस्त्र आभूषणादि धारण
कर रानियों के साथ रावण के जाने और
अनेक बातें कहने पर मैथिली ने कहा)

सुन दशमुख खद्योत प्रकाशा। कबहुँ कि नलिनी करहिं विकाशा।
असमन समुझि कहत जानकी। खलसुधि नहिं रघुवीर बानकी॥

हे रावण! कहीं पटबीजने के प्रकाश से कमल खिल सकता है। अर्थात् इसी प्रकार मेरे कमल रूपी नेत्र राम रूपी सूर्य्य को देख कर ही खुलेंगे, तुझ पटबीजने से नहीं। हे मूर्ख तुझे राम के बाण की सुध नहीं है।

शठ सूनें हरि आनेसि मोहीं। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

हे मूर्ख जिसके बाणके डरसे तू मुझे सूने में हर लाया। हे नीच निर्लज्ज! तुझे लाज नहीं आती।

आपुहि सुन खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष वचन सुनि काढिअसि, बोला अति खिसियान॥

अपने आप को पटबीजना और राम को सूर्य के समान सुन रावण ने तलवार निकाल खिसिया कर कहा।

सीता तैं मम कृत अपमाना। काटो तव शिर कठिन कृपाना॥
नाहित सपदि मानु ममवानी। सुमुखि होत नतु जीवन हानी॥

हे सीता! तैंने मेरा अपमान किया इस कारण मैं कठिन तलवार से तेरा सिर काट लूँगा इसलिए हे सुमुखि या तो शीघ्र मेरा कहा मान नहीं तो तेरे जीवन की हानि होगी अर्थात् तुझे मार डालूँगा। यह सुन जानकी जी ने कहा।

श्याम सरोज दाम समसुन्दर। प्रभु भुज करि कर समदशकंधर॥
सो भुज कंठकि तव असिघोरा। सुन शठ असप्रमाण प्रणमोरा॥

हे रावण! श्याम कमल की माला और हाथी की सूँड के समान रामचन्द्र जी की भुजायें मेरे कण्ठ में पड़ेंगी या तेरी तलवार॥७६२॥

शिक्षा—पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिये पर पुरुष से भी धर्म पूर्वक वार्तालाप करने में हानि नहीं।

मारीच का रावण को समझाना

मुनि मखराखन गयउ कुमारा । बिनु फरशर रघुपति मोहिंमारा ॥
शतयोजन आयउँ पलमाहीं । तिन सन बैर किये भलनाहीं ॥

जब कुमार अवस्था में श्रीराम विश्वामित्र के यज्ञ की रखवाली करने गये थे उस समय उन्होंने मेरे बिना फर का एक बाण मारा था जिसके लगते ही मैं यहां आपड़ा, इसलिये ऐसे प्रतापी जन से बैर करने में कभी भलाई नहीं होगी ।

जिहि ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हरको दण्ड ।
खरदूषण त्रिशिरा बधउ, मनुज कि अस बलबंड ॥

जिसने ताड़का, और सुबाहु को मार जनकराज के यहां धनुष तोड़ा खरदूषण तथा त्रिशिरा को यमपुर भेज दिया क्या यह काम साधारण मनुष्यों के हैं ।

रा असनाम सुनत दशकंधर । रहत प्राण नहिं मम उर अंतर ॥
जाहु भवन कुल कुशल विचारी । सुनत जरा दीन्हेसि बहुगारी ॥

राम के नाम मात्र से मुझे इतना भय होगया है कि जो कोई रा अक्षर को भी कहता है तो मेरे हृदय में प्राण नहीं रहता इस लिये तुम भी कुलकी कुशल विचार कर घर को चले आओ ॥

हनुमानजी का रावण को उपदेश ।

मारेसि निशिचर केहि अपराधा । कहु शठतोहि न प्राणकी बाधा ॥

रावण ने कहा हे वन्दर ! तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा ? क्या तुझे मरने का भय नहीं ।

हरको दण्ड कठिन जेइ भंजा । तोहिं समेत नृपदल मदगंजा ॥

अरे रावण ? जिन्होंने कठिन धनुष को तोड़ा और तुम्हारे सहित सब राजाओं का मद चूर कर दिया ।

खरदूषण विराध अरुबाली । बधे सकल अतुलित बलशाली ॥

उन्होंने साधारण नहीं किन्तु खर, दूषण, विराध और बाली-तुल्य सब महाबलियों को नाश किया है। उनका मैं बलवान दूत हूं तू उनकी स्त्रीको छल से हर लाया है सो उसे ढूंढनेको यहां आया हूं हे राक्षसपति ! पहिले तुम्हारे राक्षसोंने मुझे मारा तब मैंने अपने शरीर की रक्षा के लिये उन्हें मार डाला।

बिनती करौं जोरि कर रावण । सुनहु मान तजि मोर शिखावन॥
देखहु तुम निज कुलहु बिचारी । भ्रमतजि भजहु भक्त भयहारी॥

हे रावण ! मैं तुझ से भी बिनती करता हूं कि मान को त्याग कर मेरी शिक्षा मान और अपने कुलका विचार कर । तुम ब्रह्मा के परपोते पुलस्त्य के नाती विश्रवा के पुत्र हो इस लिये तुम भ्रम को छोड़कर भक्तों के भय दूर करनेहारे रामकी शरण में जाओ।

तासों बैर कबहुं नहिं कीजै । मोरे कहे जानकी दीजै ॥

और रामचन्द्रजी से शत्रुता त्याग सीताको फेरदो।

प्रणतपाल रघुवंशमणि करुणासिंधु खरारि ।
गये शरण प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ॥

श्रीरामचन्द्रजी दीनोंकी पालना करने वाले रघुवंशियों के शिरोमणि और कृपासागर हैं यद्यपि उन्होंने खरदूषण आदि को मारा है तौ भी तुम यदि शरणमें आओगे तौ तुम्हारा अपराध क्षमा करदेंगे।

रामचरन पंकज उर धरहू । लंका अचल राज्य तुम करहू ।
ऋषि पुलस्त्य यश बिमल मयंका । तेहिकुलमहं जनिहोउकलंका॥

राम के चरण कमलोंका आश्रय लेकरही तुम लंकाका अचल राज्य करसकते हो। चन्द्रमा के समान पुलस्त्यऋषि के उज्ज्वल यश को कलंकित मत करो ॥

मोह मूल बहुशूलमद, त्यागहु तुम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायकहि, कृपासिन्धु भगवान ॥

हे रावण ? तुम्हारे हृदय में जो अभिमानमूलक मोह है जिसका फल तुम्हें दुःख मिलेगा इस लिये उस अभिमान को छोड़ रामचन्द्र जी का आश्रय लो।

यद्यपि कही कपि अति हितबानी । भक्ति विवेक विरतिनयसानी ।
बोला विहसि महाअभिमानी । मिला हमहिं कपि बड़गुरु ज्ञानी ।।

इसप्रकार यद्यपि हनुमानजी ने भक्ति, वैराग्य और नीतियुक्त हितकारी वचन कहे तो भी अभिमानी रावणने हंसकर कहा कि यह बंदर बड़ा गुरुज्ञानी मिला है ।

मृत्यु निकट आई खल तोहीं । लागेसि अधम सिखावन मोहीं ।।
उलटा होइ कहा हनुमाना । मति भ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ।।

अरे बन्दर ? नीच होकर मुझे शिक्षा करना है मालूम होता है कि तेरी मृत्यु निकट आगई है । यह सुन हनुमान बोले हे राक्षसपती ? जिसकी मृत्यु निकट होती है उसकी बुद्धि में भ्रम होजाता है यथार्थ में तुम्हारी मृत्यु निकट आगई पर भ्रम के कारण जान नहीं सक्ते ।

शिक्षा—समय पड़ने पर छोटे भी बड़ों के लिये धर्मानुकूल नम्र निवेदन अवश्य किया करें । और बड़ों को भी उचित है कि यदि उनका कथन ठीक हो तो उसे मानलें ।

सच सहायक और उनसे विजयकी प्राप्ति

युद्धक्षेत्र में जिस समय सुन्दर रथ में बैठकर रावण आया उस को देखकर विभीषण ने रामचन्द्रजी से कहा।

नाथन रथनहिं तनुपदत्राना। केहि विधि जीतब रिपुबलवाना॥

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सोस्यन्दनआना॥

हे नाथ! न तौ आपके पास रथ है न पादत्राण (जूते या मोज़े) न कवच। भला यह बलवान शत्रु रावण किस प्रकार जीता जावेगा तब कृपानिधान रघुनाथ ने कहा हे मित्र! जिससे जय प्राप्त होती है वह रथ दूसरा ही है सुनो।

शौरज धीर जाहि रथ चाका। सत्यशील दृढ ध्वजा पताका॥

बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा दया समता रजु जोरे॥

उस रथ में शूरता और धीरता के दृढ़ पहिये लगे हैं सत्य और शीलता की दृढ़ ध्वजा (पताका) है। बल, ज्ञान, इन्द्रियोंका दमन, और परोपकार यही चार घोड़े हैं और वे घोड़े क्षमा दया और समता की रस्सी से बँधे हैं।

ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।

दानपरशु बुधि शक्ति प्रचंडा। वरविज्ञान कठिन को दण्डा॥

जिसपर ईश भजनरूपी सारथी बैठा है। वैराग्य की ढाल और संतोष की तलवार धरी है। दानरूपी परशा, बुद्धिरूपी प्रचण्ड शक्ति, उत्तम ज्ञानका कठिन धनुष है।

संयम नियम शिली मुखनाना। अमलं अचल मन तुणसमाना॥

अनर्थों का त्याग, और वेदविहित अर्थों का पालनरूपी नियम उस के बाण हैं निर्मल और अचल मन तरकस के समान तथा ब्राह्मणों का सत्कार ही अभेद कवच है।

सखा धर्ममय असरथ जाके। जीतन कहँ न कतहुं रिपु ताके॥

महाघोर संसार रिपु, जीत सकै को वीर।
जाके असरथ होय दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

हे मित्र ! जो पुरुष ऐसे धर्म के रथ में बैठा है उसे जीतने को कोई शत्रु नहीं अर्थात् वह सबको जीत चुका। हे सखा। जिनके ऐसा दृढ़ रथ है वही संग्रामभूमि में विजय प्राप्त करसके हैं अन्यथा महाघोर संसाररूपी शत्रुको कौन वीर जीत सका है।

शिक्षा—उपरोक्त सच्चे सहायकों द्वारा ही हमारी विजय होसकी है।

कर्मगति
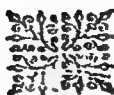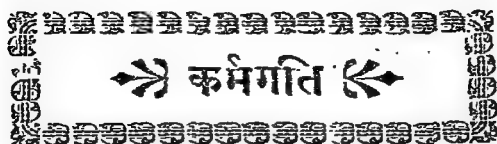
कर्मप्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं सो तसफल चाखा॥

प्रभु ने जगत में कर्मप्रधान कर रक्खा है जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है॥ ५२६॥

जन्ममरण सब सुखदुख भोगा। हानिलाभ प्रिय मिलन वियोगा॥
काल कर्मवश होहिं गुसाईं। बरबस रात दिवस की नाईं॥

रात और दिनके समान जीना, मरना, सुख दुःख, भोग, प्रिय मिलन, वियोग, हानि लाभ यह सब काल और कर्म के अनुकूल होते हैं।

(श्रीमहाराज दशरथ का तपस्वी सरवन के पिता का शाप वर्णन)।

एक समय सुन प्रिये सयानी। मृगयाकी मेरे मन आनी॥
सब मृगया कर साज सजाई। गयऊँ वनहिं संग सेन सुहाई॥

राजा दशरथ ने कहाकि हे प्यारी, कौशिल्या। एक समय मेरे मन में शिकार खेलने की आई तब ठाट बाट के साथ सेना लेकर मैं वनको गया।

रैनि समय वेतस वन तीरा। बैठो सरवर तट मति धीरा॥
ताही समय लिये घट करमें। सरवन आये जल हित सरमें॥

रात्रि के समय वेतोंके वनके तीर सरोवर के किनारे बैठा था कि उसी समय घड़ा हाथ में लिये तपस्वी सरवन जल भरने के लिये आये।

तूँवा जलमें जबहिं डुबायो। भयो शब्द मेरे मन आयो।
जान्यो मृग तब धनुष संभारा। लक्ष्यबेध करतेहि उर मारा॥

उसके तूँबा डुबाने के शब्द को सुन कर मृग जान मैंने शब्द-भेदी बाण चलाया जो उसके हृदय में लगा।

लाग्यो हिये शब्द हा कीन्हो। यह मानुष तब मैंने चीन्हो॥
गयो निकट तब लखि दुख पायो। सखन मोपे वचन सुनायो॥

जब उसके हृदय में बाण लगा और उसने हा शब्द किया तब मैंने जाना कि यह कोई मानुष है। जब मैं निकट गया तो देख कर बड़ा दुःखी हुआ। तब सखन ने मुझ से कहा—

शोच करहु मत नृपति हमारी। जो मैं कहहुं करहु यहिवारी॥
मैं सर वन से बहु पितु माता। नयन विहीन दोउ सुखदाता॥

हे राजन्! मेरा सोच मत करो और जो कहूं वह करो। मेरा नाम सखन है और मै माता पिता की सेवा करता हूं मेरे सुखदाता माता और पिता नयन विहीन हैं।

तिन्हें तृषा ने अधिक सतायो। लेन हेत जल कोहो आयो॥

उन दोनों को बहुत प्यास लगी थी सो उनके लिए मैं जल लेने आया था।

सो तुमने अज्ञान से, नृप मम मारेउ बाण।
याहि खैंचिये देह से, निकसन चाहत प्राण॥

अरु तुम मत शंकामन आनो। मेरी कही सत्य ही मानो॥
पर इक बात हिये मम लावहु। मम पितु मातु निकट तुम जावहु॥
तिनको हित से नीर पिवाई। पाछे कहियो मम समुझाई॥
करहिन शोच करहुं उपदेशा। सत्य संध रघुवंश नरेशा॥
अब तुम दीजे बाण निकारी। सुन दशरथ दुःखित भये भारी॥
हिय से जबहि निकारो बाणा। ओंकार कह छाँड्यो प्राणा॥
नृप दशरथ घट लियो उठाई। तिहि के मातु पिता ढिगजाई॥
प्यावन लगे नीर विनु बानी। तब बोले दम्पति दुख मानी॥

सो हे राजन्! आपने अज्ञान से मेरे बाण मारा जिससे मेरे

प्राण निकलना चाहते हैं। अब तुम चिन्ता न कर मेरे माता पिता के पास जाकर उन को जल पिला विनय पूर्वक समझा देना ताकि वह शोच न करें और इस बाण को मेरे हृदय से निकाल लीजिये। यह सुन मैं बहुत दुःखी हुआ, और ज्यों ही उसके शरीर से बाण निकाला कि उसने ओंकार के उच्चारण के साथ अपने प्राण छोड़ दिये। तब मैंने घड़े को उठा लिया और सरवन के माता पिता के पास जाकर विना बोले चाले जल पिलाने लगा उस समय नेत्ररहित उन दोनों ने दुःखी होकर कहा—

पुत्र न बोलत आज तुम हमसे सुन्दर बैन।
कारण कवन सोकहहु तुम जासों हो जिय चैन॥

हे पुत्र! तुम आज हमसे क्यों नहीं बोलते इसका क्या कारण है सो कहो। जिससे हमारा मन प्रसन्न हो।

विन बोले हम पियहिन नीरा। सुनं भये दशरथ अधिकअधीरा॥
समाचार सब दिये सुनाई। परे धरणि दोऊ अकुलाई॥

तुम्हारे विना बोले हम जल नहीं पियेंगे यह सुन बड़ी व्याकुलता के साथ मैंने सब हाल कह दिया जिसको सुन दोनों घबड़ा कर पृथिवी में गिर पड़े।

पुत्र पुत्र कहि रोवन लागे। मोसन कहन लगे अभागे॥
जहां पुत्र तहँ देह दिखाई। तब मैं तिन कहँ गयऊ लिवाई॥

और वे दोनों पुत्र २ कह कर रोने लगे और फिर मुझ से कहा अरे अभागे! जहां पुत्र है वहाँ हमें ले चलो। तब मैं उन दोनों को उस स्थान पर ले गया।

पुत्र उठाय गोद महतारी। रोवन लगी शब्द कर भारी॥
पुनि दोउन यह बात सुनाई। दीजे नृपति चिता बनवाई॥

महतारी पुत्र को गोदी में उठा चिल्ला कर रोने लगी। फिर दोनों ने मुझ से कहा राजन्! चिता बनवादो।

सुनि मैंने रच चिता बनाई। बैठे पुत्र सहित दोउ जाई॥
योग अग्निमें निज तनु जारा। मरण समय असवचन उचारा॥

यह सुन मैंने चिता बनादी। उसमें वे दोनों पुत्र सहित जा बैठे

और योग की अग्नि में अपना शरीर जलादिया मरते समय उन्होंने मुझ से कहा।

जिमि हम पुत्र वियोग में, दशरथ त्यागे प्राण।
ऐसे ही तनु तजहु तुम, मानहु वचन प्रमाण॥

हे राजन्! जैसे हम पुत्र वियोग में शरीर त्यागते हैं। ऐसे ही निःसन्देह तुम्हारी भी मृत्यु होगी।

शिक्षा—पुरुष को अपने किये अच्छे बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है अतः बुरे कर्मों का स्वप्न में भी चितवन न कर सदा अच्छे काम करने चाहियें।

शोचनीय कौन है।

शोचिय विप्र जोवेद विहीना। तजिनिज धर्म विषय लवलीना।
शोचियनृपहिजो नीति न जाना। जेहिन प्रजाप्रिय प्राणसमाना।

वेद विहीन ब्राह्मण तथा जो अपना धर्म छोड़ विषयों में लव-लीन रहता है उसका सोच करना चाहिये। वह राजा भी सोच करने योग्य है जो नीति नहीं जानता तथा जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं है।

शोचियवैश्य कृपण धनवानू। जोन अतिथि शिवभक्ति सुजानू।
शोचियशूद्र विप्र अपमानी। मुखरमान प्रियज्ञान गुमानी॥

वह वैश्य शोचनीय है जो धनवान होकर कृपण (कंजूस) हो तथा जो अतिथि और ईश्वर का भक्त न हो। उस शूद्र का सोचकरे जो ब्राह्मणों का अपमान करने वाला बहुत बोलने और मानी तथा ज्ञान का गुमान करे।

शोचिय पुनि पति वंचक नारी। कुटिल कलह प्रियइच्छाचारी।
शोचिय बटुनिज व्रत परिहरई। जोनहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

पति से विपरीत चलने वाली, कुटिल, कलह करने वाली और अपनी इच्छानुसार कार्य करने वाली स्त्री शोचनीय है। उस ब्रह्मचारी का भी शोच करना योग्य है जो अपने ब्रह्मचर्यव्रत को छोड़कर गुरु की आज्ञा न माने।

शोचियगृही जो मोहवश, करै धर्म पथ त्याग।
शोचिययती प्रपंचरत, विगत विवेक विराग॥

उस गृहस्थी का शोच करना चाहिये जो मोहवश धर्म मार्ग को छोड़दे उस संन्यासी के हेतु शोच करना उचित है जो पाखंडी बन रोजगार करे।

वैखानस सोइ शोचन योगू। तप विहाय जेहि भावे भोगू।

शोचियपिशुन अकारण क्रोधी। जननिजनक गुरुबंधु विरोधी।

यह वानप्रस्थ आश्रमी शोचने योग्य है जो तप छोड़ भोग में मन लगावे उस चुगली करने और बिना कारण के क्रोध करने वाले का शोच करना चाहिये जो माता, पिता, गुरु, और भाइयों से विरोध करने वाला है।

सबविधि शोचिय परअपकारी। निजतनुपोषक निर्दयभारी।
शोचिय लोभनिरत रतकामी। सुरश्रुति निन्दक परधन स्वामी॥
शोचनीय सबही विधि सोई। जोनछांडि छलहरिजन होई।

सब प्रकार से पराये काम बिगाड़ने और, अच्छे २ भोजनों को आपही खा जाने वाले, महालोभी, अत्यन्त कामी, वेद तथा विद्वानों की निन्दा तथा दूसरों का धन मारने वाले शोचनीय हैं और इन सबसे अधिक वह शोचनीय है जो बगुला भक्त बने।

शिक्षा-मनुष्य को वह काम करने चाहियें जिससे उसको पीछे पछताना और ज्ञान समाजों में निन्दनीय न होना पड़े।

जीव लक्षण

हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना । जीवधर्म अहमिति अभिमाना ।

प्रसन्नता, दुख, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार, अभिमान यह जीव के लक्षण हैं ॥ ११२ ॥

भूमिपरत भाडावर पानी । जिमि जीवहि माया लपटानी ॥

जैसे जल पृथिवी पर पड़ने से मैला हो जाता है वैसे ही जीव माया के साथ में मलिन हो जाता है ।

जो सबकेरह ज्ञान एकरस । ईश्वर जीवहिं भेद कहहुकस ।
मायावश्य जीव अभिमानी । ईशवश्य माया गुणखानी ।
परवशजीव स्ववश भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ॥

ईश्वर सबके ज्ञान का स्थान तथा एक रस है। अभिमानी जीव माया के वश और वह माया ईश्वर के आधीन है यही जीव और ईश्वर में भेद है। जीव अनेक और पर वश है तथा ईश्वर स्वतन्त्र और एक है।

श्रीराम का लक्ष्मण को ईश्वर और जीव के भेद का उपदेश ।

थोड़े में सब कहौं बुझाई । सुनहुतात मतिमन चितलाई ।
मैं अरु मोरितोरि तैंमाया । जेहिवश कीन्हें जीवनि काया ।

हे भाई। थोड़े में सब समझा कर कहता हूं तुम बुद्धि और मन लगाकर सुनो शरीर में अहंभाव (मैंही हूं) साँसारिक पदार्थों में ममता; यह माया का स्वरूप है इस मेरे और तेरे ही ने सब चराचर को अपने आधीन कर रखा है।

गोगोचर जहां लगिमन जाई । सोसब माया जानहु भाई ।
तेहिकर भेद सुनहु तुमसोऊ । विद्याअपर अविद्या दोऊ ।

इन्द्रियों का विषय और जहां तक मन जाता है वह सब माया है। उस माया अर्थात् प्रकृति के दो भेद हैं एक विद्या दूसरी अविद्या।

एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जावश जीवपराभव कूपा।
एकरचै जगगुण वशजाके। प्रभुप्रेरित नहिं निजबलताके॥

अविद्या दुष्ट और अधिक दुःख स्वरूप है जिसके वश होकर जीव संसाररूप कुए में गिरता है। विद्यारूपी माया प्रभु की प्रेरणा से संसार को रचती है।
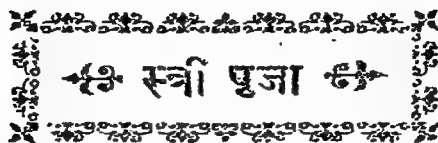
स्त्री पूजा

जिस प्रकार स्त्री को पति की सेवा करनी चाहिये
वैसे ही पुरुषों को भी स्त्री का नाना प्रकार
के आभूषण आदि से सत्कार करना
योग्य है।

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निजकर भूषण राम बनाये।
सीतहि पहिराये प्रभुसादर। बैठे फटिक शिला परमादर॥

एक बार श्रीरामचन्द्र जी सुन्दर फूल तोड़कर अपने हाथों से उसके आभूषण बना आदर पूर्वक जानकी को पहराकर सुन्दर सफेद पर्वत की शिला पर बैठे।

शिक्षा—प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्त्री का सत्कार करना योग्य है।

सच्ची जितेन्द्रियता का उदाहरण
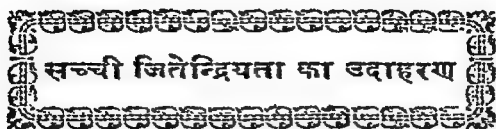
अर्थात्

भावी होते हुए भी जती लक्ष्मण ने सीता के मुखारविन्द को कभी नहीं देखा ।

कहप्रभु लक्ष्मण सोयहू बाता । पहचानत पट भूषण ताता ।
हाथ जोरि लक्ष्मण ये बोले । रघुनायक सोंवचन अमोले ।

रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा हे भाई क्या तुम यह गहने और वस्त्र पहचानते हो यह सुन लक्ष्मण ने कहा—

पगभूषण मैंसकत चिन्हारी । ऊपर कबहुं न सीय निहारी ॥

हे भ्राता ! मैं केवल पैरों के आभूषणों को ही पहिचान सकता हूं क्यों कि सीता जी की मुख की ओर मैंने कभी नहीं देखा ।

शिक्षा—बड़ों को पूज्य, बराबर वालों को समान एवं छोटों को प्रेम की दृष्टि से देखने एवं उनके साथ सद्व्यवहार करना ही जितेन्द्रियता का पहिला लक्षण है ।

अन्य उपयोगी विषय

उपदेश संग्रह।

नहिं कोउ असजन्मेउ जगमाहीं। प्रभुतापाय जाहि मदनाहीं॥

संसार में ऐसे विरले ही मनुष्य हैं जो प्रभुता पाकर घमन्ड नहीं करते।

यदपिमित्र प्रभुपितु गुरुगेहा। जइये विनवोले न संदेहा॥
तदपि विरोधमान जहं कोई। तहां गये कल्याण न होई॥

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर विना बुलाये जाने में कोई हानि नहीं तो भी जहां कोई अपने से वैर रखता हो वहां जाने में कल्याण नहीं होता।

यद्यपि जगदारुण दुःखनाना। सबते कठिन जाति अपमाना।

यद्यपि संसार में बड़े२ कठिन दुःख हैं लेकिन उसमें जाति का निरादर सबसे कठिन है।

जेकामी लोलुप जगमाहीं। कुटिल काक इवसबहिं डराहीं॥

संसार में जो कामी और लोभी हैं वे कुटिल कौए की नाईं सब से डरते हैं।

तेहिते कहहिं सन्त श्रुतिटेरे। परम अकिंचन प्रियहरि केरे॥१४२॥

इस कारण वेद और सन्त कहते हैं कि जो कामी और लोभी नहीं है वह ईश्वर के प्यारे हैं।

नहिं असत्यसम पातक पुंजा। गिरिसम होहिंकिकोटिक गुंजा।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये। वेदपुराण विदित मुनिगाये॥

असत्य (झूंठ) के बराबर और पातकों के समूह भी नहीं हो सकते जैसे करोड़ों चौंटली पर्वत के समान नहीं हो सकतीं। जितने सुन्दर अच्छे कार्य हैं उन सब का मूल सत्य है ऐसा वेद, पुराण और मनु ने कहा है॥

सनुतियतनय धामधन धरणी । सत्य साधकहं तृणसमवरनी ॥

शरीर, स्त्री, पुत्र, धाम धन और पृथिवी यह सत्यवादियों को तृण के समान हैं ॥ अर्थात् सत्य के सन्मुख यह सब तुच्छ हैं।

वर्षहिं जलद भूमि नियराये । यथा नवहिं बुध विद्या पाये ।

जिस प्रकार बरसने वाले बादल पृथिवी के निकट आकर बरसते हैं वैसे ही पंडित विद्या प्राप्त कर नम्र और सुशील हो जाते हैं।

खोजत पंथ मिले नहिं धूरी । करै क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ।

जैसे वर्षाऋतु में धूलि कहीं नहीं मिलती वैसे ही क्रोध करने से धर्म नहीं रहता।

शशि सम्पन्न सोहमहि कैसी । उपकारी की संपति जैसी ।

वर्षा ऋतु में हरियाली से पृथिवी ऐसी शोभित होती है जैसे परोपकारी की संपत्ति।

महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतन्त्र हुइ विगरहिं नारी ॥

स्वतन्त्रता से स्त्री ऐसी विगड़ जाती है जैसे वर्षाकाल में पानी क्यारियों को तोड़कर निकल जाता है।

विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । बढ़ै प्रजा जिमि पाय सुराजा ॥
जहंतहं पथिक रहे थक नाना । जिमिइन्द्रिय गण उपजे ज्ञाना ॥

सुराज्य को पाकर प्रजा ऐसे बढ़ती है जैसे वर्षाऋतु में अनेक जीव। वर्षाकालमें बटोही बाहर न निकल घर में ऐसे बैठे रहते हैं जिस प्रकार ज्ञान उत्पत्ति होजाने से इन्द्रियां स्थिर होजाती हैं।

कबहुं प्रबल चल मारुत, जहं तहं मेघ विलाहिं ।
जिमि कुपूत के ऊपजे, कुल कर धर्म नशाहिं ॥

कुपूत के उत्पन्न होते ही कुल के सब धर्म ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे तेज वायु के चलने से मेघ।

उदित अगस्त्य पन्थ जल शोषा । जिमि लोभहिं शोषै संतोषा ।

जैसे अगस्त्य तारे के उदय होने पर मार्ग का जल सूखना प्रारम्भ होजाता है वैसेही संतोष से लोभ का नाश होजाता है।

जल संकोच विकल भयें मीना। विबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना।

बड़े कुटुम्बी विना धन के ऐसे व्याकुल होते हैं जैसे थोड़े जल में मछली।

सेवक सुखचह मानभिखारी। व्यसनी धन शुभगति व्यभिचारी॥
लोभी यश चह चारु गुमानी। नभदुहि दूध चहत ये प्रणी॥

सेवक को सुख, भिखारी को मान व्यसनी को धन व्यभिचारी (दुराचारी) को श्रेष्ठगति, लोभी को यश, और अभिमानी को शोभा की इच्छा करना ऐसा है जैसे कोई आकाश को दुह कर दूध चाहे॥ ६५१॥

संगते यती कुमन्त्र से राजा। मानते ज्ञान पानते लाजा।
प्रीति प्रणय विनु मद से गुनी। नाशहिं वेग नीति अस सुनी॥

संगति से सन्यासी, खोटे मन से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा पीने से लाज, नम्रता के विना प्रीति और अहंकार से गुणों का नाश तत्काल होजाता है।

शस्त्री-मर्मी प्रभु शठ धनी। वैद्य बंदि कवि मान सगुनी।

हथियार बंध, मर्म जानने वाला पड़ोसी, राजा, मूर्ख, धनी, हकीम, भांड़ कवि, और गुणी पंडित से वैर न करे।

पर हित वशजिन के मन माहीं। तिनकहंजगदुर्लभकछुनाहीं॥

जिनके मनमें परोपकार वसता है उनको संसार में कुछभी दुर्लभ नहीं।

सेवक शठ नृप कृपण कुनारी। कपटी मित्र शूल समचारी।

मूर्ख सेवक, कृपण, राजा, दुष्ट स्त्री, कपटी मित्र यह शूल के समान हैं।

अनुज वधू भगिनी सुतनारी। सुन शठ ये कन्या समचारी।
इन्हें कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई॥

छोटे भाई की बहू, वहिन-बेटे की बहू और पुत्री ये चारों समान हैं इनको जो कोई खोटी दृष्टि से देखे उसके मारने से पाप नहीं होता।

१—सन्यासी को ३ दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये और न कभी किसी का संग करना चाहिये।

जोकरि कपट छलै जगकाहू । देइहि ईश अधम गतिताहू ॥

जो कोई कपट से किसी को छलता है ईश्वर उसको नीच गति देता है ॥ १५१ ॥

बड़ेसनेह लघुनपर करहीं । गिरिनिज शरन सदा तृण धरहीं ॥

बड़े मनुष्य छोटों पर सदा प्रीति करते हैं जैसे पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण करता है ॥ १४७ ॥

जेहिके जेहिपर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥

निःसन्देह जिसका जिसपर सत्य सनेह होता है सो तिसको अवश्य मिलता है ।

अनुचित उचित काजकछु होई । समुझिकरिय भलकह सबकोई ।
सहसाकरिपाछे पछिताहीं । कहहिंवेद बुधतेबुध नाहीं ।

उचित या अनुचित कार्य को सोच समझ कर करने से श्रेष्ठ कहाते हैं । जो शीघ्रता करने वाले हैं वह स्वयं पीछे पछताते और पंडितों की दृष्टि में नीचे गिर जाते हैं ॥

गुरुबिनु भव निधि तरै न कोई । जोबिरंचि शंकर समहोई

बिनुगुरु होइकि ज्ञान, ज्ञानकि होय विरागविनु ।
गावहिं वेद पुरान, सुखकिलहहिं हरिभक्तिविनु ॥
कोउविश्राम किपाव, तात सहज संतोष विनु ।
चलैकि जलबिनुनाव, कोटियत्न पचिपचि मरै ॥

विना गुरु के ज्ञान और ज्ञान के विना वैराग्य नहीं होता । वेद और पुराणों का यह भी कथन है कि विना ईश्वर भक्ति के सुख नहीं मिलता । हे तात ! स्वाभाविक संतोष के विना शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती जैसे अनेक यत्न करने पर भी विना जलके नौका नहीं चलती ।

बिनु संतोष न काम नसाही । काम अछत सुख स्वप्नेहुनाहीं ।
रामभजन बिनुमिटहिं न कामा । थलविहीन तरुकबहुंकिजामा ॥

विना संतोष के काम का नाश नहीं होता तथा कामी पुरुष

को स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती। ईश्वर के भजन विना कामना का नाश नहीं होता जैसे पृथ्वी के विना वृक्ष नहीं जमता।

बिनुविज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकाशकि नभ बिनुपावै।
श्रद्धाबिना धर्मनहिं होई। बिनुमहिगंध कि पावै कोई॥

ज्ञान के विना समता, आकाश के विना अवकाश, श्रद्धा के विना धर्म और पृथिवी के विना गंध मालूम नहीं होती॥

बिनुतपतेज किकरु बिस्तारा। जलबिनु रस कि होइ संसारा।
शील कि मिलु बिनुबुध सेवकाई। जिमिबिनु तेज न रूप गुसाँई॥

विना तपके तेज की वृद्धि तथा संसारमें जलके विना रस, और पंडितों की सेवा के विना शील की प्राप्ति नहीं होती जैसे तेज के विना रूप नहीं दीखता।

निजसुख बिनु मनहोइ कि थीरा। परसिकि होइविहीन समीरा।
कवनिउ सिद्धिकिबिनु बिश्वासा। बिनुहरि भजन न भवभयनासा॥

विना मन स्थिर किये ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकी जिस प्रकार वायु के विना स्पर्श नहीं होता। विश्वास के विना सिद्धि और ईश्वर के भजन के विना संसार के भय का नाश नहीं होता।

शिक्षा—इन अमूल्य वचनों पर सदा ध्यान रखना चाहिये।

ओ३म्

पात्र-परिचय।

दशरथ-अयोध्या के अधिपति थे।

रामचन्द्र-राजा दशरथ के बड़े पुत्र।

लक्ष्मण-रामचन्द्र के छोटे भाई।

भरत-लक्ष्मण के बड़े भाई।

शत्रुघ्न-लक्ष्मण के छोटे भाई।

कौशिल्या-राजा दशरथ की बड़ी रानी।

कैकयी-सबसे छोटी रानी।

सुमित्रा-महाराजा दशरथ की द्वितीय रानी।

वसिष्ठ-कुल पुरोहित।

विश्वामित्र-मुनि।

सीताजी-महाराजा जनक की पुत्री।

अनुसुइया-अगस्त्य ऋषि की पत्नी।

मन्दोदरी-रावण की बड़ी रानी।

मारीच-नाना प्रकार के कपट वेष धारण करने वाला राक्षस

गुह-निषादों का राजा श्रीराम का मित्र।

जटायू-अरुण राजा का छोटा पुत्र।

हनुमान-अंजनि का पुत्र और सुग्रीव का मन्त्री।

* ओ३म् *

विषय-सूची

॥ ओ३म् ॥

भारत प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों को स्वाध्याय करने योग्य अमूल्य पुस्तकें

नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम प्रथम भाग १॥) तीय भाग १) पुराणतत्व प्रकाश तीन भाग २) गर्भाधान-त्रि ≡) वीर्य्य रक्षा ≡) सत्यनारायण =) प्रेम धारा ॥) या हम रामायण पढ़ते हैं =) कलियुगी परिवार का एक य ।) धर्मात्मा चाची अभागा भतीजा ।-) स्वप्न =) भर-प्रकाश ॥ मौत का डर -)॥ बुद्धि अज्ञान की बातें)॥ यथार्थ शा-निरूपण ।, शान्ति शतक =) द्वैत प्रकाश -) संध्यादर्पण -)। सार फल)॥ नीत्युक्त स्त्री धर्म ≡) स्मृत्युक्त स्त्री धर्म -)॥ वर सिद्धि ॥ पूरण भक्त की कथा -)॥ भजन पचासा -) न गजरा दोनों भाग =)

चित्र—श्री स्वामी दयानन्द जी -) स्वामी विरजानन्द जी -) मी श्रद्धानन्द जी -) पं० लेखराज जी -) पं० गुरुदत्त जी -) त्मा हंसराज जी -) सम्राट वास्त्राशी =)

आदर्श जीवन।

श्रीस्वामी दयानन्दजी ५००के लगभग बड़े अठपेजी पृष्ठ तीन त्र सहित १=) दशरथ =) राम ≡) लक्ष्मण -) भरत -)॥ ष्ठिर ≡) अर्जुन ≡) द्रोणाचार्य =) विदुर ≡) दुर्योधन ≡)। राष्ट्र ≡) मंदालसा ।॥

मिलने का पता—

चिम्मनलाल भद्रगुप्त वैश्य

तिलहर जि० शाहजहाँपुर